

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182525

UNIVERSAL
LIBRARY

ह मा रे
(गांवोंकी कहानी)

लेखक
स्व० रामदास गौड़, एम० ए०

सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

प्रकाशक—

मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री

सस्ता साहित्य मंडल,

नई दिल्ली

तीसरी बार, १९४५

मूल्य

डेढ़ रुपया

मुद्रक—

अमरचंद्र जैन,

राजहंस प्रेस, सदर बाज़ार,

दिल्ली

भूमिका

आधुनिक ऐतिहासिक विद्वान् विशेषतः भारतवर्षके इतिहासके संबंधमें मुख्य धारणाओंके साथ अपने सभी विचारोंको सुसंगत करनेकी कोशिश करते हैं। उनकी एक धारणा यह है कि पाश्चात्य इतिहासकी तरह यहांका इतिहास भी विकासवादके अनुरूप होना चाहिए। दूसरी धारणा यह है कि मानव-सभ्यताका इतिहास इतना पुराना नहीं है जितना हिंदू बताते हैं। तीसरी धारणा यह है कि आर्य लोग कहीं विदेशसे भारतमें किसी भूतकालमें आये थे। पहली धारणामें यह दुर्बलता है कि विकास-विज्ञान उत्तरोत्तर वर्धमान शास्त्र है। उसके आधारपर इतिहासकी कोई स्थिर इमारत सभी देशों और कालोंके लिए सुभीतेसे नहीं खड़ी की जा सकती। दूसरी धारणा भी पहलीके ही आधारपर है और विज्ञान गत पचास बरसोंके भीतर सृष्टि और सभ्यताके भूतकालकी सीमाको बराबर बढ़ाता आया है, अतः इस धारणामें भी स्थिरताका अभाव है। तीसरी धारणा कुछ विशेष कल्पनाओंके आधार पर है जिनपर भी विद्वानोंका मतभेद है। हमारा प्राचीन साहित्य हमारे निकट उसका तनिक भी समर्थन नहीं करता। सुतरां मैं तीसरी धारणाको निराधार मानता हूं।

पाठकोंके सामने भारतीय गांवोंके इतिहासके जो ये पृष्ठ मैं रख रहा हूं, उनमें मैंने उपर्युक्त तीनों धारणाओंकी जानबूझ कर उपेक्षाकी है। साधारण पाठक भी इस झगड़ेमें नहीं पड़ना चाहेंगे कि सतयुग पांच हजार पहले हुआ या बीस लाख बरस पहले। या यह कि सतयुगमें, यदि वह सृष्टि कालके पास था, मनुष्यको कपड़े बनानेकी कला आनी चाहिए या नहीं। अथवा यह कि यहांके गांवोंको आर्योंने बाहरसे आकर बसाया या वे भारतमें पहलेसे ही बसे हुए थे। हमारे इतिहासका आधार हमारा साहित्य है और उसमें भी यह विषय सर्वसम्मत है कि वेदोंसे अधिक पुराना संसारमें कोई साहित्य नहीं है। पुराने-से-पुराने साहित्यके आधार पर प्राचीनतम गांवोंका इतिहास अवलंबित है, फिर चाहे उसे पांच हजार

बरस हुए हों; चाहे पांच लाख । हमारे गांवोंकी जबसे आबादी है, हम उसी समयसे अपने वर्णनका आरंभ करते हैं । फिर चाहे वे गांव इस भूतलपर किसी देशके क्यों न हों वे गांव हमारे ही थे किसी और जाति-के नहीं ।

इस कहानीके लिखनेका उद्देश्य यह है कि हम अच्छी तरह देखें कि हमारी उन्नति कहांतक हुई थी और आज हमारा पतन किस हद तक हुआ है । अपनी वर्त्तमान स्थितिको अच्छी तरह समझनेके लिए भूत-कालकी स्थितिका जानना आवश्यक है, क्योंकि वर्त्तमानकाल भूतकालका पुत्र है । साथ ही भावी उन्नति और उत्थानके लिए ठीक मार्ग निश्चय करनेमें भूतकालका इतिहास बड़ा सहायक होता है । आज हमारे गांवोंके लिए जीवन और मरणका प्रश्न खड़ा है । इसे हल करनेके लिए भी हमें अपने पूर्वकालका सिंहावलोकन करना आवश्यक है । ग्राम-संगठनकी समस्या देशके सामने है । उसकी पूर्तिमें इस कहानीसे सहायता मिल सकती है । इस कहानीकी हमारे ग्राम-संगठनके काममें कुछ भी उपयोगिता सिद्ध हुई तो मैंने, इस पोथीके संकलनमें, जो कुछ परिश्रम किया है उसे सार्थक समझूंगा ।

बड़ी पियरी,
काशी

रामदास गौड़

विषय-सूची

१. सतजुगी गांव	१
२. सतजुगके बादके गांव	१५
३. कलजुगका प्रवेश	२६
४. चाणक्यके समयके गांव	३८
५. प्राचीन कालका अंत	४६
६. पूर्व माध्यमिक काल	६१
७. परमाध्यमिक काल	६६
८. कंपनीका कठोर राज्य	८२
९. विक्टोरियाके राजसे वर्तमानकाल तक	८६
१०. किसानोंकी बरबादी	११६
११. दरिद्रताके कडुए फल	१३२
१२. और देशोंसे भारतकी खेतीका मुकाबिला	१५६

हमारे गांवोंकी कहानी

: १ :

सतजुगी गांव

१. गांव किसे कहते हैं ?

तथा शूद्रजनप्राया सुसमृद्धकृषीबला ।

क्षत्रोपयोग-भू-मध्ये वसतिप्रमिसंज्ञिका ॥

—मार्कण्डेय पुराण ।

गांव किसे कहते हैं ? आज भारत देशमें कोई ऐसी बात पूछ बैठे तो लोग उसे पागल कहेंगे । बड़े-से-बड़े शहरमें रहने-वाला बड़ा आदमी भी जिसे किसी बातकी कमी नहीं है, कम-से-कम हवा खानेके लिए गांवकी ओर जरूर जाता है । इसलिए कोई ऐसा नहीं है जो गांवके लिए पूछे कि किसे कहते हैं । तो भी भारी-भारी पंडितोंने यह बताया है कि गांव किसे कहते हैं । गांव उसी बस्तीका नाम है जिसमें मेहनत-मजूरी करनेवाले, और सब जरूरतकी वस्तुओंसे रंजे-पुंजे खेतिहर रहते हों और जिसके चारों ओर खेती करनेके लायक धरती हो । ऊपर लिखे श्लोकके लिखनेवालेने गांवके रूपका एक नक्शा खींचा है । भारत खेतोंका देश है । अन्न और कपड़ा इन्हीं खेतोंसे मिलते हैं । संसारकी अच्छी-से-अच्छी चीजें, भोग-विलासकी सामग्रीतक लगभग सभी इन्हीं खेतोंकी उपज है । इन्हीं खेतोंकी बदौलत किसान सुखी और निश्चित रह सकता है । इन खेतोंपर मेहनत मजूरी खूब जी लगाकरकी जाती है, तभी सब मनचाहा सामान

मिल सकता है। इसलिए गांवमें मजूर और किसान इन दोनोंका होना जरूरी है। मजूर जब अपने खेतमें काम करता होता है, तब किसान कहलाता है। किसान जब मजूरी लेकर दूसरेका काम करता है तब मजूर कहलाता है। गांवके रहनेवाले सभी मजूर और किसान हैं। एक कुम्हार जब औरोंको बरतन बनाकर देता है, एक तेली जब औरोंके लिए तेल पेलता है, एक कोरी जब औरोंके लिए कपड़े बुनता है, और एक चमार जब औरोंके लिए जूते बनाता है, तब वह मजूरका काम करता है। परंतु जब कुम्हार, तेली, कोरी, चमार, बनिया, कायस्थ, क्षत्रिय, ब्राह्मण अपने लिए अपने खेती-बारीका काम करते हैं, तब सब-के-सब किसान हैं। गांवमें आपसके और नाते भी होते हैं, तब मजूर और किसानका आपसका नाता सबमें बराबर है। आदमी सभी बराबर हैं। सब अपना-अपना काम करते हैं।

आजकल भी हम गांवोंमें देखते हैं तो थोड़ी-बहुत ऐसी ही बात पाई जाती हैं। पंडितोंने जो गांवका नक्शा खींचा है वह बिल्कुल मिट नहीं गया है। आज भी हम गांवोंमें जाकर देखते हैं तो मजूरों और किसानोंको पाते हैं। हां, उन्हें सुखी नहीं पाते। बहुतसे हड्डीकी ठठरी देख पड़ते हैं। बहुत-से रोगी, आलसी और बेकार भी हैं। आधेसे अधिक ऐसे हैं जिन्हें दिन रातमें एक बार भी भरपेट रुखी रोटी नहीं मिलती। खेतोंमें अनाज पैदा होता है, पर वह न जाने कहां चला जाता है। वे अन्न उपजाते हैं, पर औरोंके लिए। वे चोटीका पसीना एड़ीतक बहाते हैं और कामके पीछे मर मिटते हैं; पर औरोंके लिए। धूप, आंधी, ओले, पाला, बरफ सबका कष्ट मेलकर सेवा करते हैं पर उनकी सेवा करते हैं जो उन्हें लात मारते हैं; उपकारके बदले उल्टे अपकार करते हैं। उनकी यह बोर दरिद्रता—जिसको देखकर रोयें खड़े हो जाते हैं, जी दहल जाता है—उन अपकारियोंपर कोई प्रभाव

नहीं डालती। वे कहते हैं कि ये तो सदाके दरिद्री हैं, पशु हैं और हमारे सुखके लिए बनाये गए हैं। उनकी कल्पनामें इन गांवोंके सुखके दिन आते ही नहीं। आजकलकी पच्छाही कल-पुरजोंकी सभ्यतासे जिनकी आंखें चौंधियां गई हैं, पच्छाहकी मायासे जिनकी बुद्धि चकरा गई है, वे सोचते हैं कि मजूरों और किसानोंकी दशा पहले कभी अच्छी रही हो, ऐसा नहीं हो सकता और आज तो इनकी दशा सुधारनेके लिए बड़े-बड़े कल कार-खाने खुलने चाहिए। क्या इनके विचार ठीक हैं? क्या मजूर और किसान पहले अधिक सुखी नहीं थे? क्या पहले भी आजकी तरह खेतीसे इनका गुजारा नहीं होता था? इन बातोंपर विचार करनेके लिए हमें प्राचीनकालकी सैर करनी चाहिए।

२. सतजुगका आरंभ

सतजुगकी चर्चा हमने बहुत सुनी है, पर हम नहीं जानते कि सतजुग किसे कहते हैं। पंडित लोग बताते हैं कि वह समय बहुत-बहुत दिन हुए, बीत गया। लाखों बरसकी बात है। अनेक पढ़े-लिखे कहते हैं कि कई लाख नहीं तो कई हजार बरस तो जरूर बीत गए हैं। चाहे जितना समय बीता हो वे लोग जिसे वेदका युग कहते हैं उसीको सतजुग भी कहा जाता है। पंडितोंका यह भी कहना है कि भारतके लोग आर्य हैं, और आर्यका सीधा-साधा अर्थ किसान है।^१ आर्य किसानको कहते हैं, इस बातकी गवाही वेदोंसे भी मिलती है।^२ राजा पृथुकी कथा,

१. रमेशचन्द्र दत्त रचिन अंग्रेज़ीके “प्राचीन भारतमें सभ्यताका इतिहास”, पृष्ठ ३५

२. यवंवृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुषाय दस्त्रा ।

अभि दस्युं बकुरेणा धमन्तोरुज्योतिश्चक्रथुरार्याय ॥ ऋक्१।१७।२१
हे अश्विनी कुमारो ! हलसे जुते खेतमें यवादि धान्य बुवाते हुए

सीताजीका जन्म, अकाल पड़ जाने पर बड़े-बड़े ऋषियोंकी तपस्या, यज्ञ, पूजा आदि कथाओंसे पुराण भरे हैं। कृष्ण और हलधर किसानों हीके नाम हैं। खेती गोपालन और व्यापार वैश्योंका खास काम बताया गया है। किसान बिना गऊ पाले खेतीका काम चला नहीं सकता। और खेतीमें उपजा हुआ अन्न जब गांवके खर्चसे बचेगा तो उसे अपने गांवसे बाहर बेचना ही पड़ेगा। इसलिए जो काम वैश्य जातिका बताया गया है वह किसानका ही काम है। वेदोंमें 'विश्व' आर्य प्रजाके लिए आया है। इसीसे वैश्य भी किसान हीको कहते हैं।'

तथा मेघ वरसाते हुए खेतके नाश करनेवाले दस्युको बकुर (वज्रसे) मारते हुए तुम दोनोंने आय वैश्यके लिए विस्तीर्ण सूर्य नामकी ज्योति बनाई है
ओमासश्चर्षणी धृतो विश्वे देवास आगत । दाशवांसो दाशुषः सुतम्॥१॥

ऋक् १ । ३ । ७

उत नः सुभगां अरिवोचेयुर्दस्म कृष्टयः । स्थामेदिन्द्रस्य शर्मणि ॥ २ ॥

ऋक् १ । ४ । ६

चर्षणि, और कृष्टि—ये दोनों शब्द मनुष्य वाचक हैं। हे देवताओ ! धनादि देनेवाले आप लोग हवि देनेवाले यजमानके घरपर पधारो ॥१॥

हे शत्रु-नाशक इंद्र ! तेरी कृपासे शत्रु भी हमें अच्छा बतलावें, फिर हम इंद्रसे प्राप्त सुखमें रहें ॥ २ ॥

१. पुरुष सूक्तके सिवाय संहिताओंमें और कहीं 'वैश्य' शब्द नहीं आया। 'विश्व' शब्दका बराबर प्रयोग है जिसका अर्थ 'साधारण प्रजा' लिया गया है। इसलिए यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि 'वैश्य' साधारण प्रजाके अधिकांश समुदायका नाम होगा। यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि देशके भरण-पोषणके लिए सबसे अधिक संख्या किसानों हीकी होनी चाहिए। ब्राह्मणों और क्षत्रियोंकी आवश्यकतानुसार अत्यंत कम, शूद्रों अर्थात् मजदूरोंकी संख्या लगभग किसानों अथवा वैश्योंके बराबर होगी।

हमारी दुनिया सतजुगसे ही शुरू है और बोलीका शुरू भी सतजुगमें ही मानना पड़ेगा। इसलिए हम सहजमें ही समझ सकते हैं कि सतजुगमें खेतीका काम बहुत होता रहा होगा। साधारण लोग खेती या मजूरी ही करते रहे होंगे। प्रोफेसर संतोषकुमार दास अपनी अंग्रेजीकी “प्राचीन भारतका सांपत्तिक इतिहास” नामकी पुस्तकमें पृष्ठ ६ पर लिखते हैं कि “धरतीके चार विभाग होते थे। (१) वास्तु (२) कृषियोग्य भूमि (३) गोचर भूमि (४) जंगल। वास्तुभूमिका मालिक किसान होता था।..... वास्तवमें जितने युद्ध हुआ, करते थे, गऊ या खेतोंके हरणके लिए हुआ करते थे। जीतका भाग जीतनेवालोंमें बंट जाता था।” लोग गांवमें अपने परिवारके साथ रहते थे और खेतोंके मालिककी हैसियतसे खेती करते थे। बाप मर जाता था तब बेटोंमें जायदाद बंटती थी। गोचर-भूमि और जंगलपर सबका अधिकार था। वेदोंमें इन अधिकारोंके दायभागकी भी चर्चा है। इस पोथीमें यह भी लिखा है कि “प्रोफेसर कीथ (Keith) और दूसरे विद्वान् कहते हैं कि इस जुगमें शहर होते ही न थे, शहरका होना सिद्ध करनेके लिए जो मंत्र कहा जाता है, उसका अर्थ यह विद्वान यह लगाते हैं कि शरद्ऋतुमें बाढ़ आनेपर इन मिट्टीके पुरोंमें किसान लोग शरण लेते थे। यह ‘पुर’ एक प्रकारके बांधका नाम है।” जो हो; तो इसमें संदेह नहीं मालूम होता कि शहर थे भी, तो बहुत कम रहे होंगे। गांवोंकी ही गिनती सबसे ज्यादा होगी।

मंत्रोंसे यह भी पता चलता है कि हलसे खेत जोते जाते थे

१. शतमश्मन्मयोनां पुरामिन्द्रो व्यास्यत् । दिवोदासाय दाशुषे ॥

ऋग्वेद मं० ४ सू० ३० म० २०

तथा प्रो० संतोषकुमार दासकी पुस्तक पृष्ठ १०-११

इंद्रने दिवोदास नामक यजमानको पत्थरके बने हुए सौ ‘पुरों’को दिया।

और जौ, गेहूँ, धान, मूँग आदि अनाज और गन्नेकी पैदावार बहुतायतसे होती थी।^१ लोग गाय, बैल, घोड़े, भेड़, बकरी रखते थे और चरानेको लेजाया करते थे। समय-समयपर खेतीके संबंधमें नई उपजपर, फसल खड़ी होनेपर, कटनेपर, बोनेके समय इत्यादि अवसरोंपर किसान यज्ञ करता था और बड़ी अच्छी दक्षिणा देता था। ब्राह्मणके दाहिनी ओर गाय होती थी, जो यज्ञके अंतमें उसे दी जाती थी। दक्षिणा नाम इसीसे पड़ा है। आजकल पुरोहित जो पद-पदपर गऊ-दान मांगता है, वह इस पुराने रिवाजके अनुसार ही है। किसान कितना धनवान होता था, इसका पता उसकी दक्षिणासे लगता है। किसानकी आमदनी खेतीसे, पशुओंसे और बागों और जंगलोंकी उपजसे अधिक होती थी। पर केवल अनाजके ही कारोबारमें लोग फंसे नहीं रहते थे। वेदोंमें सूत, रेशम, ऊन और छाल आदिके बने हुए बारीक और उत्तम कपड़ोंका अनेक प्रमंगोंमें वर्णन हुआ है। इसलिए यह बात बिल्कुल जाहिर है कि किसान लोगोंमें कताई और बुनाईका काम बहुत फैला हुआ था। बचे हुए समयमें ये लोग कताई, बुनाईकी कलाके अभ्यासमें लगे रहते थे।^२ ये

१. युवो रथस्य परि चक्रमीयत ईर्मान्यद्रामिप्रणयति ।

अस्मां अच्छा सुमतिर्वा शुभस्यती आ धेनुरिवधावतु ॥

ऋग्वेद मं० ८ सू० २२ मं० ४

हे अश्विनीकुमारो ! तुम्हारे रथका एक चक्र द्युलोककी परिक्रमा करता है, दूसरा तुम दोनोंके समीपसे जाता है। हे उदकरक्षक ! कुमारो ! तुम्हारी अच्छी बुद्धि हमारी तरफ़ धनादि देनेके लिए उसी प्रकार आवे, जिस प्रकार नव-प्रसूता गौ दूध पिलानेके लिए बच्चेके पास जाती है।

२. नाहं तन्तुं विजानाम्योतुं न यं वयन्ति समरेऽतमानाः ।

कस्य स्वित् पुत्र इह वक्त्वानि परो वदात्यवरेण पित्रा ॥

मं० ६ । सू० ६ । स० २

ऊनका रंग उड़ा देते थे और कपड़ोंको सुंदर-सुंदर रंगोंमें रंगते थे। सिले हुए कपड़े और अच्छे प्रकारकी पोशाक पहनते थे। दूध, घी, तेल, मसाले और औषधियां काममें लाते थे; शहद इकट्ठा करते थे; शक्कर बनाते थे। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि उनके यहां तेल और गन्ने पेलनेके कोल्हू थे, खंडसाल थीं, करघे थे, चरखे थे। खेतकी सिंचाईके लिए कुंए थे, जिनसे रहंट-

न मैं तंतुको और न ओतुको ही जानता हूं और न इन दोनोंसे बनने वाले कपड़ेको जानता हूं। किसका सुपुत्र इन वक्तव्य-व्याख्यातव्य ज्ञापनीय बातोंको सूर्यसे नीचे लोकमें रहनेवाला पुरुष बतला सकता है अर्थात् कोई नहीं। यदि कोई इन बातोंका पता चला सकता है तो सिर्फ वैश्वानर-से ही। यह वैश्वानरकी स्तुति है।

स इत्तन्तुं स विजानात्योतुं स वक्त्वान्युतथा वदाति।

य ई चिकेतदमृतस्य गोपा अवश्चरन् परो अन्येन पश्यन्॥

म० ६। सू० ६। म० ३

इस प्रकार तंतु आदिका जानना अत्यंत कठिन है परंतु यदि कोई जानता है तो वह वैश्वानर ही जानता है--और वही व्याख्या करता है, जो कि सूर्य, अग्नि आदि रूपोंसे द्युलोक और भूलोकादिमें स्थित है।

स मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः।

मूषो न शिशना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो वित्तं मे अस्य रोदसी

१। १०५। ८

मुझे कृपकी भीतें तकलीफ देती हैं जिस प्रकार सौतें एक पतिको दुःख देती हैं तथा जुलाहेको चूड़े जो कि आ-आकरके तंतु काट जाते हैं, जिनपर मांड लगा रहता है। हे इंद्र! तेरे स्तोता मुझको आंधियां बहुत ही सताती हैं।

इन्द्र ब्रह्म क्रियमाणा जुषस्व या ते शविष्ठ नव्या अकर्म।

वस्त्रेव भद्रा मुकृता वसू रथं न धीरः स्वपा अतक्ष्म॥

५। २६। १५

से पानी निकाला जाता था । नाले और नहरोंसे भी सिंचाई होती थी । कभी-कभी सखा भी पड़ जाता था और लोग अकालका भी मुकाबला करते थे । उनके बर्तन तांबे, पीतल, फूल कांसेके होते थे । अमीरोंके घर सोने और चांदीके बर्तन बरते जाते थे । वे गाड़ी, रथ और नाव भी रखते थे और जूते पहनते थे । अच्छे-अच्छे कच्चे-पक्के मकान बनाते थे, चित्रकारी करते थे, मूर्तियां बनाते थे, बच्चोंको पढ़ाते-लिखाते थे और अच्छे-अच्छे व्यंजन

हे बलवत्तर ! इंद्र ! हमने तेरी नवीन-नवीन स्तुति तैयार की हैं जिस प्रकार अच्छे-अच्छे वस्त्रोंसे रथ तैयार किया जाता है, आप उन्हें स्वीकार कर हमें धनवान् बनाइये ।

उच्यते वपुषि यः स्वराडुत वायो घृतस्त्राः ।

अश्वेषितं रजेषितं शुनेषितं प्राज्म तदिदं नु तत् ॥ ८ । ४६ । २८

इस स्तुत्य शरीरमें जो स्वराट् (अंत) विद्यमान है वह अश्व गधे, कुत्ते इन सबको अभीष्ट है, वह अन्न हमें दे । और वह अन्न सामने ढेरी रूपमें विद्यमान है ।

गावो न यूथमुपयन्ति वध्रय उप मा यन्ति वध्रयः । ८ । ४६ । ३७
मुझे गौएं तथा बधिये बैल प्राप्त हो रहे हैं ।

अधयच्चार थे गणे शतमुष्ट्रां अचिक्रदत् ।

अध श्वित्रेषु विंशतिंशता ।

८ । ४६ । ३१

जंगलोंमें भुंड रूपमें चरनेवाले ऊंट हमें प्राप्त हों । और श्वेत-रंग वाली गौओंके सौ बीसे प्राप्त हों । (इस प्रकारके इस मंडलमें बहुत मंत्र हैं) ।

आर्धाषणायः पतिः शुचायाश्च शुचस्प च ।

वासो वायोऽवीना मावासाँसि ममृजत् ॥ ऋक् १० । २६ । ६

अपने लिए पाली गई बकरी और बकरीका पालक सूर्य हमारे लिए षेड़ोंकी ऊनके बने हुए वस्त्र (जिनको धोवियोंने धोया है) प्रकाश और ण्णतासे शुद्ध करता है ।

बनाकर खाते थे। इन सब बातोंसे जाहिर होता है कि गांवमें किसान ही रहते थे और वे खेतीके सिवाय और भी काम किया करते थे। ब्राह्मण पुरोहिती करता था और खेती भी करता था।

त्वमग्ने प्रयत दक्षिणं नरं वमैव स्यूतं परि पासि विश्वतः ।

स्वादु क्षन्ना यो वसतौ स्थानकृज्जीवयाजं यजते सोपमा दिवः ॥

ऋक् १ । ३१ । १५

हे अग्ने ! तू प्रयतदक्षिण पुरुषकी उस प्रकार रक्षा करता है जैसे ताने, बाने, तुरी, वेमा आदिसे बनाया हुआ कवच उससे ढके हुए मनुष्यकी रक्षा करता है। जो सुखकारी यजमान जीवयजन सहित यज्ञको करता है वह स्वर्ग की उपमा होता है। अर्थात् जिस प्रकार स्वर्ग प्रत्येकको सुख देता है उस ही तरह वह भी ऋत्विगादिकोंको सुख देने वाला कहलानेसे स्वर्ग है।

सयह्वयोऽवनीर्गोष्वर्वा जुहोति प्रधन्यासु सस्त्रिः ।

अपादो यत्र युज्यासोऽरथा द्रोण्यश्वासईरतेघृतंवाः ॥ ऋक् १०।६६।४
वह घोड़ा (इन्द्रे) मेघोंमें जाता है, पृथ्वीपर चलता है। और वह बिना पैरके जहां चलते हैं, वहां, जहां रथसे नहीं चलते वहां तथा नदियोंमें भी चलता है।

समु प्र यन्ति धीतयः सर्गोऽवताँ इव ।

ऋतुं नः सोम जीवसे विवो मदे धारया चमसां इव विवक्षसे ॥

ऋक् १० । २५ । ४

हे सोम ! हमारी स्तुतियाँ रहटकी डोलचियोंके समान इकट्ठी ही चलती हैं जिस प्रकार वे कूपमें इकट्ठी जाती हैं। तुम भी हमारे लिए यज्ञको उस प्रकार धारण करो जिस प्रकार तुम्हारे लिए अध्वर्यु चमस-को धारण करता है।

वावर्त येषां राया युक्तैषां हिरण्ययी ।

नेमधिता न पौस्या वृथेव विष्टान्ता ॥ ऋक् १० । ६३ । १३

जिनके धनके कारण हमारी स्तुति बार-बार हिरण्यालंकारके समान

क्षत्रिय रक्षा करता था और खेती करता था । बनिया व्यापार भी करता और खेती भी करता था । मजूर मजूरी भी करता था और खेती भी । कुम्हार, तेली, भड़भूँजे, चमार, कोरी, ठठेरा, लुहार, बढ़ई, धीवर, ग्वाले, धुनिये, सुनार, धोबी, रङ्गरेज, दर्जी, माली आदि सभी कारबारके लोग गाँवोंमें रहते थे और अपने कारोबारके साथ-साथ खेती जरूर करते थे । श्रम-विभागके अनुसार जातियाँ बन गई थीं । ये जातियाँ धीरे-धीरे वंशानुगत हो गईं । चित्तको प्रसन्न कर रही हैं । जिस प्रकार पुरुषोंकी सेना संग्राममें और रहटकी घटिका यन्त्रमाला कृपमें देखनेपर चित्तको प्रसन्न करती है ।

प्रीणीताश्वान् हितं जयाथ स्वस्तिवाहं रथमित्कृणुध्वम् ।

द्रोणाहावमवतमश्मचक्रमंसत्रकोशं सिञ्चता नृपाणम् ॥ १०।१०।१।७

हे ऋत्विजो ! तुम घोड़ोंको घासदाना आदि खिला-पिलाकर मोटा ताजा रखो और फिर खेत वगैरा बोओ । और चयन नामक रथको स्वास्तिवाहक बनाओ । बैलोंके पीनेके लिए चौबच्चे लकड़ी, पत्थर आदि-के गहरे बनाओ तथा ऐसे हौज भी बनाओ जिनसे मनुष्य जल पी सकें ।

सौरायुञ्जन्ति कवयो युगान् वि तन्वते पृथक् ।

धीरा देवेषु सुमनया ॥

ऋक् १० । १०१ । ४

मेधावी पुरुष हल जोड़ (त) ते हैं, जूओंको अलग-अलग बनाते हैं, जिससे हमें सुख प्राप्त हो ।

इस प्रकार इस मंडलमें तथा अन्य मंडलोंमें भी इस प्रकार ऋग्वेदमें वास्तु विद्याका विस्तृत वर्णन मिलता है ।

यत्ते वासः परिधानं यां नीविं कृणुषे त्वम् ।

शिवं ते तन्वे तत् कृणमः संस्पर्शद्रूद्धणमस्तु ते ॥ अथर्व० ८।२।१६

हे बालक ! तेरा जो ओढ़ने व पहिनेका वस्त्र है यह तेरे लिए सुखकारी हो-और हम उस वस्त्रको मुलायम बनाते हैं । इत्यादि ।

इसी प्रकार १० । १०१ । ३ में ऋग्वेदमें सातों अनाजोंके बोनेकी भी वेदमें आज्ञा मिलती है । इत्यादि ।

सतजुगमें गांवोंकी इस व्यवस्थाको देखकर यह कौन कह सकता है कि आजकलकी तरह उस समय भी मजूर और किसान भूखों मरने थे। उस समयकी चर्चामें भुखण्डोंकी और दुर्भिक्ष पीड़ितोंका वर्णन नहीं है। अधिकांश मनुष्य अपने-अपने अधिकार पर बने रहते थे। दूसरोंका हक छीननेका चाल कम थी। धर्मकी बुद्धि अधिक थी। हरेक गांव अपने लिए स्वतंत्र था। पाप-बुद्धि कम होनेसे चोर, डाकू या और सत्वापहारियोंका डर न था। यह सतजुगका आरंभ था।

३. राजकर और लगानकी रीति

सतजुगके आरंभमें बहुत कालतक किसी ऊपरी हकूमत या शासनकी जरूरत न पड़ी होगी, क्योंकि प्रजामें अपने-अपने कर्तव्य पूरा करनेका भाव था, और धर्म-बुद्धि थी। पराये धनका लोभ लाजच प्रायः तभी अधिक होता है, जब अपने पास किसी वस्तुकी कमी होती है। मनुष्योंकी बस्ती घनी न थी, सारी बस्ती पड़ी थी। इसलिए लोग जरूरतसे ज्यादा धनी और सुखी थे। यह भी कहना अनुचित न होगा, कि इंद्रियोंके सुखकी सामग्री न ज्यादा तैयार हुई थी, और न उसका उनको ज्ञान था। अज्ञानके कारण भी लोभ उनको नहीं सताता था। ईसाइयोंके सतजुगमें भी आदमने जबतक ज्ञानके पेड़का फल नहीं खाया था, तबतक उसे मालूम न था, कि मैं नंगा हूं और नंगा रहना बुरी बात है। ज्ञानका फल खाते ही उसे इंजीरके पेड़को नंगा करके अपना तन ढकना पड़ा। बागमें ज्ञान और जीवनके पेड़ थे, जिनका फल खाना उसके लिए वर्जित था। शैतानकी दम-पट्टीमें आकर उससे यह भारी भूज होगई। मालूम होता है कि ज्यों-ज्यों आबादी बढ़ती गई त्यों-त्यों तैयार की हुई धरती मनुष्यके लिए घटती गई। लोभ रूपी शैतानने आदमीको बहकाया। वह पर-

मात्माकी आज्ञाको भूल गया' उसे यह ज्ञान हुआ कि मेरे पास संपत्ति कम है, और पड़ौसीके पास ज्यादा। या अगर मेरे पास पड़ौसीसे ज्यादा सम्पत्ति होजाती तो मैं अधिक सुखी हो जाता। लोभने दूसरेकी चीज हर लेनेकी ओर उसके मनको झुकाया धीरे-धीरे धर्म-भावका लोप होने लगा, स्वार्थ और पापने अपनी जड़ जमाई। कोई राजा या हाकिम न था जो बलके प्रयोगमें बाधा डालता।

“राखै सोई जेहि ते बनै, जेहि बल होइ सो लेइ।”

यही नियम चलेने लगा। “जिसकी लाठी उसकी भैंस” वाली बात चरिताथ होने लगी, किसी तरहका राज न होनेसे उस समय प्रजा एक दूसरेका उसी तरह नाश करने लगी थी, जैसे पानीमें बड़ी-बड़ी मछलियाँ छोटी-छोटी मछलियोंको खाने लगती हैं। इस तरह बजवानों और निबलोंका भगड़ा जब समाजमें उथल-पुथल मचाने लगा, उस समय जिन लोगोंमें थोड़ी धर्म-बुद्धि थी, वे समाजकी इस गड़बड़को मिटानेके लिए लड़ने वालोंको सप्रभाने-बुझाने लगे, और यह कोशिश करने लगे कि गई हुई धर्म-बुद्धि लौट आये, इसमें वे सफल न हुए। भले लोगोंने इन पशु-बल वालोंसे बचनेके लिए, यह निश्चय किया कि जो लोग वचनके शूर हैं, लवार हैं, सबपर जबर्दस्ती किया करते हैं, पराई स्त्री और पराये धनको हर लेते हैं, उन सबका हम लोग त्याग करेंगे। असहयोग इस तरह सतजुगमें ही आरंभ हुआ था।

जान पड़ता है, कि असहयोग बहुत कालतक नहीं चला।

१. ईशावास्यमिदं सर्व्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् । तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम् । यजु० ४० । १ ।

यह सब कुछ, जो कुछ कि चलायमान संसार है, वह परमात्माके रहनेकी जगह है, परमात्मा सबमें व्यापक है। उसके प्रसादकी तरह जो कुछ तुम्हें मिले, उसका भोग करो, किसी औरके धनका लालच मत करो

जो जबरदस्त थे, किसीका दबाव नहीं मानते थे, व्यभिचारी थे, और दूसरोंका धन हर लेंते थे, उनकी गिनती शायद बहुत बढ़ गई थी, और इतनी बढ़ गई थी कि उनमें थोड़ी गिनती वाले धर्मात्माओंके त्यागका उनपर कोई असर न पड़ा । अच्छोंने प्रजापतिसे शिकायत की । इसपर पितामह ब्रह्माने एक बहुत बड़े धर्मशास्त्रकी रचना की, जो क्रमसे बहुत छोटे रूपमें धर्म-भीरु मनुष्योंको मिला । इसका नाम दंड-नीति रक्खा गया । परंतु इतनेसे काम न चला । दंड कौन दे ? तब शासन करने वालेकी जरूरत हुई । लाचार लोग प्रजापतिके पास गये, परंतु प्रजापति अधिकारके लोभी थे । उन्होंने लोगोंको मनुके पास भेजा । मनु बोले, राजाका काम बड़ा कठिन है, और पापसे भरा है । जो लोग भूँके व्यवहारमें लगे रहते हैं उनपर, और खासकर भूँके मनुष्योंपर शासन करनेसे मैं डरता हूँ । मनुष्य समाजके सामने यह बड़ी कठिनाई आ खड़ी हुई । उसने मनुको प्रसन्न करनेके लिए उन्हें यह वचन दिये—“आप पापके लिए न डरिये

१. अराजकाः प्रजाः पूर्वे, विनेशुरिति नः श्रुतम् ।

—महाभारत, शान्तिपर्व ।

वाक्शूरो दंडपरुषो यश्च स्यात्पारजायिकः

यः परस्वमथादद्यात्पाज्या नस्तादृशा इति ।

तास्तथा समयं कृत्वा समये नावतस्थिरे ॥ म० भा० शा० प०

विभेमि कर्मणः पापाद्राज्यं हि भृशदुस्तरम् ।

विशेषतो मनुष्येषु मिथ्यावृत्तेषु नित्यदा ।

तमब्रुवन्प्रजा मा भैः कर्तृनेनो गमिष्यति ।

पशूनामधिपंचाशद्विरण्यस्य तथैव च ॥

धान्यस्य दशमं भागं दास्यामः कोषवर्द्धनम् ।

यं च धर्मं चरिष्यन्ति प्रजा राज्ञा सुरक्षिताः ॥

चतुर्थं त्वस्य धर्मस्य त्वत्संस्थं वै भविष्यति ।

पाप करने वाला उसके फलको भुगत लेगा। आपका कोष बढ़ाने-
के लिए हम पशु और सोनेका पचासवां और अनाजका दसवां
भाग देते रहेंगे। आपसे रक्षा पाकर हम लोग जो भले कर्म करेंगे
उसका चौथाई फल आपको मिलेगा। उस पुण्यसे सुखी होकर
आप हमारी रक्षा उसी तरह कीजिए जैसे इंद्र देवताओंकी रक्षा
करता है।

जान पड़ता है भगवान् मनुने राज-भार लेनेपर जो बंदोबस्त
किया उसका आधार यही इकरारनामा था। बंदोबस्त करनेके
बदले और रक्षा कराईके वेतनमें मनुष्योंको भूमिपर कर देना
पड़ता है। मनुका धर्मराज था। जिन लोगोंने जंगल काटकर
मेहनत करके जितनी धरतीको खेत बनाया था, उतनी धरती
उनकी संपत्ति होगई। बहुतोंके पास जरूरतसे ज्यादा धरती थी।
बहुतोंने यह चाहा कि हमें धरतीको बनानेकी मेहनत न करनी
पड़े और खेत मिल जायं। बहुतोंके पास इतने खेत थे, कि वे
सबको काममें नहीं ला सकते थे। इस तरह लेने और देनेवाले
दोनों मौजूद होगये। खेत कुछ कालके लिए या सदाके लिए किराये
पर दिये जाने लगे। इसीका नाम लगान पड़ा। राजाका महसूल
जमीनके मालिकको देना पड़ता था। लगान धरतीका मालिक लेता
था। इस तरह धरतीका मालिक खेतीवालेसे जो लगान लेता था
वह इतना होता था कि अनाजका दसवां भाग राजाको देनेके
बाद भी उसे कुछ आय बच जाती थी। खेती करने वालेको छठे
भाग तक लगान में दे डालना पड़ता था। कुछभी हो, धरती राजा
की नहीं थी। प्रजाकी थी। राजा रक्षा करता था। जो भूमि-कर
उसे मिलता था वह राजाकी तनख्वाह थी। शुक्र नीतिमें भी
ऐसा लिखा है।

तेन धर्मेण महता सुख लब्धेन भावितः ।

पाह्यस्मान् सर्वतो राजन् देवानिव शतक्रतुः ।

जिन राजाओंने धर्मके तत्वको ठीक तरह पर न समझा और अपनेको धरती और प्रजाका मालिक समझकर मनमानी करने लगे, दीनों और दरिद्रोंपर अन्याय करने लगे, तब प्रजाका नाश होने लगा और उन राजाओंका अपने ही कर्तव्यसे विनाश होगया। राजा वेन अपनी जबर्दस्तियोंके कारण ऋषियोंके हाथ मारा गया। राजा पृथु गद्दीपर बैठाया गया। प्रजाकी उचित रक्षा करने और धरतीसे अन्न-धन निकालकर प्रजाको सुखी रखनेसे पृथुका राज ऐसा मशहूर होगया कि उसीसे सारी धरतीका नाम पृथ्वी पड़ गया।

दंड-नीतिको चलानेवाला राजा होने लगा। वह प्रजापतिकी ही जगह था। इसलिए संसारकी प्रजा उसीकी प्रजा होगई। वह भूप या भूपाल या नरपाल कहलाया, क्योंकि वह धरती और किसानकी रक्षा करता था। उसे तनखाहमें राज-कर मिलता था, जिसे वह प्रजाकी धरोहर समझता था और रक्षाके काममें लगाता था। उसे अपने लिए बहुत थोड़े अंशकी जरूरत होती थी। जमींदारी रयतवारी, लगान, राजा, राज-प्रबंध सबकुछ तभीसे चल पड़े।

: २ :

सतजुगके बादके गांव

१. त्रेता और द्वापर

सतजुगके बादके समयको विद्वान लोग त्रेता और द्वापर युग कहते हैं। उसीको प्रायः पच्छाहीं रीतिसे विचार करनेवाले ब्राह्मण-युग कहते हैं। इस युगमें भी जितनी बातें सतजुगमें होती थीं उतनी सभी बातें पायी जाती हैं। युग बदल गया, बहुत काल बीत गया, लोग वेदोंको भूल गये, उनका अर्थ समझना अत्यंत कठिन हो गया। परंतु लोग धातुओंका निकालना न भूले, सोने-चांदीके

सिक्के बनाना न भूले, अनाज उपजाना, पशु पालना, और व्यापार करना बराबर पहलेकी भांति जारी था । भगवान रामचंद्रजी के राजमें, जिसे लिखनेवाले तो १०-११ हजार बरस तकका बतलाते हैं, पर जो अवश्य बहुत कालतक रहा होगा, कभी अकाल नहीं पड़ा था और जब एक ब्राह्मणका लड़का जवान ही मरगया तो वह उसकी लाश भगवान रामचंद्रजीके दरबारमें लाया और राजसिंहासनसे विचार कराना चाहा कि लड़का क्यों मरा । क्योंकि उस समय यही समझा जाता था कि अल्पमृत्यु, अकालमृत्यु और दुर्भिक्ष या प्रजाकी दरिद्रता ये सब कष्ट जो प्रजाको कभी पहुंचता है, तो इसका दोषी या अपराधी राजा होता है । और यह बात तो बिल्कुल साफ ही है कि जब सबतरह से रक्षा करना राजाका ही काम था, तब प्रजामें रोग, दरिद्रता, अल्पमृत्यु तो तभी होगी जब उसकी रक्षा पूरे तौरपर न होगी और राजा अपने धर्मका पालन न करेगा और कर बसूल करता जायगा । इससे यह पता चलता है कि रामराज्यमें प्रजा सब तरहसे सुखी थी । अर्थात् किसान सुखी, समृद्ध और एक दूसरेकी सहायता करनेवाले थे । सतजुगकी तरह अब भी खेतीमें बहुत बड़ा और भारी हल काममें आता था । उसका फल बहुत तेज और पैना होता था और मूठ चिकना होता था । एक-एक हलमें चौबीस-चौबीस तक बैल जोते जाते थे । खेतकी जैसी उत्तम प्रकारकी विचाई होती थी उसीतरह खाद भी देना जरूरी था, और भांति-भांतिके अनाज उपजाये जाते थे । आज जितने अनाज उपजाये जाते हैं, प्रायः सभी उस समय भी होते थे ।

१. लांगलं पवीरवत् सुशीमं सोमसत्सरु ।

उदिद् वपतु गामविं प्रस्थावदूरथवाहनं पीवरीं च प्रफर्व्यम् ॥ अथर्व ३।१७।३

तेज फलवाला हल, सोम यज्ञके साधन सब अन्नोका उत्पादक होनेसे सुखकर है ! वह बैल, भेड़ आदिको गमन-समर्थ, मोटा-ताजा रथादिवाहन समर्थ बनावे ।

रामायणसे पता चलता है कि खेती भारी कला समझी जाती थी, क्योंकि उस समय वेदोंके साथ-साथ शिक्षाका मुख्य विषय खेती और व्यापार था। श्रीरामचंद्रजी भरतजीसे पूछते हैं कि “तुम किसानों और गोपालोंके साथ अच्छा बर्ताव रखते हो या नहीं।” खेती इतने जोरोंसे होती थी कि अयोध्याजी किसानोंसे भरी हुई थी। धानकी उपज बहुतायतसे दिखाई गई है। राजा इस बातका गर्व करता है कि उसका राज्य अन्न-धनसे भरा हुआ है। गांवोंके वर्णनोंमें यह कहा गया है कि वे चारों ओर जुती हुई धरतीसे विरे हैं।’

हर गांवमें ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र और हर पेशेवाले, जिनकी जीवनमें सबसे ज्यादा जरूरत पड़ती है, जैसे नाई, धोबी

शुनासीरे ह स्म में जुषेथाम् ।

यद्विवि चक्रथुः पयस्तेने मामुपसिञ्चतम् ॥ अथर्व ३।१७।७

हे शुनासीर देवो ! जो मेरे खेतमें पैदा हुआ है उसे सेवन करो । और जो आकाशमें जल है उससे इस खेतको सींचो ।

“चतुरौदुम्बरो भवत्यौदुम्बरः स्त्रुव औदुम्बरश्चमस औदुम्बर इध्मा आदुम्बर्वा उपमन्थिन्यौ । दशग्रम्याणि धान्यानि भवन्ति—ब्रीहियवाः तिलमाषा अणुप्रियङ्गवो गौधूमाश्च मसूराश्च खल्वाश्च खलकुलाश्चेति । बृहदारण्यकोपनिषत् अ० ६ । ब्रा. ३ । म. १३.

“दस तरहके ग्रामीण अन्न होते हैं—धान, (चावल) जौ, तिल, उड़द अणु, (सांवा-कंगनी) मसूर, खल्व, कुल्था, गेहूँ ।”

ब्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे प्रियंगवश्च मे ऽणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् । १८।१२।

इस मन्त्र का अर्थ स्पष्ट है ।

१. अयोध्याकांड सर्ग ६८; बालकांड सर्ग ५; अयोध्याकांड, ३।१४; अयोध्याकांड सर्ग ६२ ।

दर्जी, कहार, चमार, बढ़ई, लुहार, सुनार, ग्वाले, गड़रिये आदि होते थे। गांवका सरदार या मुखिया भी कोई होता था, और पंचायतोंसे हर गांव अपना स्वाधीन बंदोबस्त किया करता था। रक्षाके लिए राजाको उसका उचित कर उगाहकर मुखिया दिया करता था, और उसके बदले राजा बाहरी बैरियोंसे गांवोंकी रक्षा करता था, फिर चाहे वह वैरी मनुष्य हो, कृमि, कीट, पतंग हो, रोंग, दौष, अकाल, सूखा, पानीकी बाढ़, आग, टीड़ी आदि कुछ भी हो। राजा दसवें भागसे लेकर छठे भागतक कर लेकर भी राष्ट्रकी रक्षा नहीं कर सकता था, तो उसे प्रजाका चौथाई पाप लगता था ^१।

किसानको त्रेता और द्वापरमें खेतीकी आजकलकीसी साधारण विपत्तियां भेजनी पड़ती थीं। चूहे, घूस, छछूंदरें बीज खा जाती थीं, चिड़ियां आदि अंकुरोंको नष्ट कर देते थे। अत्यंत सूखा या बहुत पानीसे फसलें बरबाद हो जाती थीं। अच्छी फसलोंके लिए उस समय भी भांति भांतिके उपाय करने पड़ते थे। परंतु खेतीको जबकभी हानि पहुंचनेकी संभावना होती राजा रक्षाका उपाय करनेका जिम्मेदार था। और जबकभी दुर्भिक्ष पड़ता था राजाके ही पापसे पड़ता था। राजा रोमपादके राजमें उन्हीके पापसे काल पड़ा बताया जाता है। ^२ राजाका कर्त्तव्य था कि दुर्भिक्ष-निवारणके सारे उपाय जाने और करे।

१. आदायबलिषड्भागं यो राष्ट्रं नाभिरक्षति ।

प्रतिगृह्णाति तत्पापं चतुर्थीशेन भूमिपः ॥ --महाभारत

२. बालकांड, सर्ग १; अथोध्याकांड, सर्ग १००; बालकांड, सर्ग ६।७

‘एतस्मिन्नेव कालेतु रोमपदः प्रतापवान् ॥

अंगेषु प्रथितो राजा भविष्यति महाबलः ।

तस्य व्यतिक्रमाद्राज्ञो भविष्यति सुदारुणा, ।

अनावृष्टिः सुधोरा वै सर्वलोकभयावहा ॥ इत्यादि ।

व्यतिक्रमात्तुराजोचितधर्मविलोपनादिति तिलकव्याख्या ।

इस युगमें भी गोशालायें बहुत उत्तम प्रकारसे रक्खी जाती थीं। इस युगमें घोष पल्लियां^१ अर्थात् ग्वालोंके गांव-के-गांव थे। और ग्वाले बहुत सुखी और धनी थे और दूध, मक्खन, घी आदि केलिए प्रसिद्ध थे। द्वापरके अंतमें नंदगांव, गोकुल, बरसाना और वृन्दावनतक गोपालोंके गांव थे और कंस जैसे अत्याचारी और लुटेरेके राजमें भी मथुराके पास इन गांवमें दूध, दहीकी नदी बहती थी। और नंद और वृषभान जैसे बड़े अमीर ग्वाले रहते थे। इस समयमें भी कुम्हार, लुहार, ग्वाले, ज्योतिषी, बढ़ई, धीवर नाई, धोबी, बिनकार, सुराकार (कलवार) इषुकार (तीर बनानेवाले) चमड़ा गिमानेवाले, घोड़ेके रोजगारी, चित्रकार, पत्थर गढ़नेवाले, मूर्ति बनानेवाले, रथ बनानेवाले, टोकरी बनानेवाले, रस्सी बनानेवाले, रंगरेज, सुनार, धातु निकालनेवाले नियारिये, सूखी मछली बेचनेवाले, मुईकार, जौहरी, अस्त्रकार, नकली दांत बनानेवाले, दांतके वैद्य, इतर बेचनेवाले, माली, थवई, जूते बनानेवाले, धनुष बनानेवाले, औषध बनानेवाले और रासायनिक आदिकी चर्चा इस समयके ग्रंथोंमें आई है।^२

कपड़ेकी बिनाईकी कला भी अपनी हदको पहुंच चुकी थी। सोने और चांदीके कामके कपड़े, जरीके कामके पीतांबर आदि

१. तैत्तिरीय ब्राह्मण, कांड १। प्र० ४। अ० ६। ख० २। से मालूम होता है कि गायें तीन बार चरनेको भेजी जाती थीं और उनकी अच्छी सेवा होती थी। तथाहि—

“त्रिषु कालेषु पशवः तृणभक्षणाथं सञ्चरन्ति।

तत्तन्मध्याकाले तु रोमन्थं कुर्वन्तो वर्त्तन्ते। इति।” अर्थ स्पष्ट है।

२. शुक्ल यजुर्वेद अध्याय १६ और ३०, रामायण अयोध्या कांड सर्ग १००, बालकांड, सर्ग ५। हम वेदके मंत्रोंका उदाहरण नहीं देते क्योंकि सारा अध्याय ही उदाहरणीय है। अतः पाठक किसी भी मंत्रको उठाकर देख सकते हैं। तथा बालकांडका सारा सर्ग ही यहां पठन योग्य है।

भी बनते थे। जिनमें जगह-जगहपर रत्न और नगीने टके हुए थे। ब्राह्मण लोग कौशेय वस्त्र पहनते थे और तपस्वी छालके बने कपड़े पहनते थे। रंगाई भी अच्छी होती थी। रुईके मैलको उड़ाने-के लिए इस युगमें एक यंत्र काममें आता था। उनके रेशमके बड़े अच्छे-अच्छे प्रकारके महीन और रंगीन और चमकीले कपड़े बनते और बरते जाते थे।^१

ऐसा जान पड़ता है कि पेशेवालोंकी पंचायतें भी उस समय अवश्य थी। जो पंचायतका सभापति होता 'श्रेष्ठ' कहलाता था।^२

खेतीके काममें स्त्रियोंका भी भाग था। खेतीका काम इतना पवित्र समझा जाता था कि उसके लिए यज्ञ करनेमें स्त्री-पुरुष दोनों शामिल होते थे।^३ जहां पुरुष अन्न उपजाता था वहां

१. "कौशेयानि च वस्त्राणि यावत्तुष्यति वै द्विजः" इत्यादि

भूषणानि महार्हाणि वरवस्त्राणि यानि च"। अयोध्याकांड ३०।४४

"सुंदरकांडका नवां सर्ग ही द्रष्टव्य है। पाठक देख सकते हैं।

"साहसोत्फुल्लनयनां पाण्डुरक्षौमवासिनीम्" इत्यादि अयोध्याकांड ७।७

"जातरूपमयैर्मुखैरंगदैः कुण्डलैः शुभैः।

सहेमसूत्रैर्मणिभिः केयूरैर्वलयैरपि। इत्यादि अयोध्याकांड २३।५

"दन्तकाञ्चनचित्रांगैर्वैदूर्यैश्च वरासनैः।

महार्हास्तरणोपेतैरुपपन्नं महाधनैः। इत्यादि सुंदरकांड १०।२

"रौक्मेषु च विशालेषु भाजनेष्वप्यभक्षितान्।

ददर्श कपिशार्दुलो मयूरान् कुक्कुटाँस्तथा। सुंदरकांड ११।१५

"तां रत्नवसनोपेतां गोष्ठागारावतंसिकाम्।

यन्त्रागारस्तनीमृद्धां प्रमदामिव भूषिताम्। सुंदरकांड ३।१८

२. अथर्ववेद, १।६।३; शतपथ ब्राह्मण, १३।७।१।१; ऐतरेय ब्राह्मण, १३।३६।३, ४।२५।८-६।; ७।१८।८; छान्दोग्य उपनिषद्, ५।२।६; कौषीतकी उपनिषद् ४।२०, २।६, ४।१५; बृहदारण्यकोपनिषद् १।४।१२।

३. येनेन्द्राय समभर; पयांस्युत्तमेन ब्रह्मणा जातवेदः।

किसानकी स्त्री अन्नके कामको पूरा करती थी। उसके स्वादिष्ट भोजन तैयार करती थी। अन्नपूर्णा देवीका आदर्श पालन करती थी।

भारतके जंगलोंसे लाक्षा आदि रंगनेकी सामग्री किसान लोग इकट्ठी करके काममें लाते थे और इसका व्यापार इतना बढ़ा-चढ़ा था कि भारतके बाहरके देशोंमें भी रंगकी सामग्री बिकनेको जाया करती थी।

गांवमें अन्न, पशु, आदिसे बदलकर और जरूरतकी चीजें लेनेकी चाल तब भी थी जैसी कि आज अन्नसे बदलकर लेनेकी चाल बाकी है। बदलनेकी यह रीति उस समय इसलिए प्रचलित न थी कि उस समय सिक्कोंका चलन न था। सिक्कोंका तो उस समय सतजुगसे प्रचार चला आया था। हिरण्यपिंड निष्क, शतमान, सुवर्ण इत्यादि सोनेके सिक्के थे। कृष्णाल एक छोटा सिक्का था, जिसमें एक रत्ती सोना होता था।^१ बात यह है कि उस समय गौएं सस्ती थीं और पालनेका खर्च बहुत नहीं था। गौओंकी संतान सहज ही बढ़ती थी और उत्तम-से-उत्तम पोषक भोजन घी, दूध, दही कौड़ियोंके मोल था। अनाज देशमें ही खर्च होता

तेन त्वमग्ने इहवर्धयेमं सजातानां श्रैष्ठ्यं आवेह्ये नम्॥ अथर्व. १।६।३

हे अग्ने ! जिस मंत्रसे तू देवताओंको उत्तम अन्न प्राप्त कराता है उसी मंत्रसे इस पुरुषको “श्रेष्ठ” पदका अधिकारी बना।

“श्रेष्ठो राजाधिपतिः समाज्यैष्ठ्यं श्रैष्ठ्यं राज्यमाधिपत्यं गमयत्वहमेवेदं सर्वमसानीति”। छांदोग्य अध्याय ५ खंड ६०। मंत्रका अर्थ स्पष्ट है।

श्रैष्ठ्य स्वाराज्यं पर्येति” ४।२०, “भूतानि श्रैष्ठ्याय युज्यन्ते” २।६ “इदं श्रैष्ठ्याय यम्यते” ४।१५ कौषीतकी ब्राह्मणोपनिषत् ॥ अर्थ स्पष्ट है।

“श्रेयांसं हिसित्वेति” १।४।१२ बृहदारण्यकोपनिषत्।

१. शतपथ ब्राह्मण ५।४।३, २४, २६; ५।५।१६; १२।७।२।१३; १३।२।३।२; तैत्तिरीय ब्राह्मण १।७।६२ और १२।७।७ और १७।६।२.

था। रेलकी क्रांचियोंमें लद-लदकर करांचीके बंदरगाहसे बाहर नहीं जाता था। इसतरह किसान लोग धनी और सुखी थे और व्यवहार व्यापारमें सच्ची अदला बदलीसे काम लेते थे। उस समय धन और संपत्तिका सच्चा अर्थ समझा जाता था। पर जो भारी-भारी व्यापारी या साहू महाजन थे वे सोने, चांदी, मोती, मृंगे और रत्नोंको इकट्ठा करते थे। राजा और राज कर्मचारी भी अमीर होते थे, जिनके पास सोने, चांदी और रत्नोंके सामान बहुत होते थे। परंतु ऐसे लोग भारी संख्यामें न थे। भारी संख्या किसानोंकी ही थी।

सोना, चांदी, रत्न, टंक, बंग, सीसा, लोहा, तांबा, रथ, घोड़े, गाय, पशु, नाव, घर, उपजाऊ खेत, दास-दासी इत्यादि इस युगमें धन, संपत्तिकी वस्तुएं समझी जाती थी। जहां कहीं ब्राह्मणोंके दान पानेकी चर्चा है वहांसे पता लगता है कि उस समय धन कितना था और किस तरह बंट जाता था। राजा जनकने साधारण दानमें एक-एक बार हजार हजार गौएं, बीस-बीस हजार अशर्फियां विद्वान् ब्राह्मणोंको दी हैं। एक जगह वर्णन है कि एक भक्तने २५ हजार सफेद घोड़े, दस हजार हाथी और अस्सी हजार गहनोंसे सजी दासियां यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणको दी ?^१

इसी युगके सिलसिलेमें महाभारतका समय भी आता है। यह द्वापरका अंत और कलियुग के आरंभमें पड़ता है। महाभारतके समयमें हिन्दुस्तानके जो राज्य थे उन सबकी राज्य-व्यवस्थाओंमें खेती, व्यापार और उद्योगके बढ़ानेकी ओर सरकार की पूरी दृष्टि थी। इस विषयके लिए एक अलग राजविभाग

१. छान्दोग्यपनिषद् ४।१७।७; ५।१३।१७ और १८; ७।२।४। शतपथ ब्राह्मण ३।४८; तैत्तिरीय उपनिषद् १।५।१२; बृहदारण्यकोपनिषद् ३।३।११; शतपथ ब्राह्मण २।६।३।६; ४।१।११; ४।३।४।६; तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।१२।५, ११-१२

था। सभा-पर्वमें नारदने और बातोंके अलावा राजा युधिष्ठिरसे यह भी पूछा है कि रोजगारमें सब लोगोंके अच्छी तरहसे लग जाने पर लोगोंका सुख बढ़ता है। इसलिए तेरे राजमें रोजगार वाले विभागमें अच्छे लोग रखे गये हैं न ?” इस अवसर पर रोजगारके अर्थ में वार्ता शब्द आया है। वार्ता या वृत्तिमें, वैश्यों या किसानोंके सभी धंधे समझे जाते हैं। श्रीमद्भगवद् गीतामें, जो महाभारतका ही एक अंश है, भगवान् कृष्णने कहा है कि खेती, बनिज और गोपालन ये तीनों धंधे स्वभावसे ही वैश्योंके लिए हैं। खेतीमें वह सब कारबार शामिल है जो खेतीकी उपजसे संबंध रखते हैं। और गोरक्षामें पशुपालनका सारा कारबार शामिल है। इसी तरह बनिजमें सब तरहका लेनदेन और साहू-कारी शामिल है इन सबका नाम उस समय वार्ता था और आज-कल अर्थशास्त्र है।^१

२. द्वापर का अंत

महाभारत कालमें व्यवहार और उद्योग-धंधों पर लिखते हुए श्री० चिंतामणि विनायक वैद्यने अपने अपूर्व ग्रंथ ‘महाभारत-मीमांसा’में खेती और बगीचेके संबंधमें जो कुछ लिखा है वह हिंदीमें ही है इसलिए यहां हम उसे ज्यों-का-र्यों दे देते हैं:—

“महाभारत कालमें “आजकलकी तरह लोगोंका मुख्य धंधा खेती ही था और आजकल इस धंधेका जितना उत्कर्ष हो चुका है, कम से-कम इतना तो महाभारत कालमें भी हो चुका था। आजकल जितने प्रकारके अनाज उत्पन्न किये जाते हैं वे सब उस समय भी उत्पन्न किये जाते थे।

१. क्विचत्स्वनुष्ठिता तात वार्ता ते साधुभिर्जनैः।

वार्तायां संश्रिते नूनं लोकोयं सुखमेधते ॥—महाभारत सभापर्व
उस समयमें विद्याके चार विभाग थे। त्रयी, दंडनीति, वार्ता और आन्वीक्षिकी। त्रयी, वेद को कहते थे। दंडनीति धर्मशास्त्र था। और आन्वीक्षिकी, मोक्ष शास्त्र या वेदांत था। वार्ता, अर्थशास्त्र था।

खेतीकी रीति आजकलकी तरह थी। वर्षाके अभावके समय बड़े-बड़े तालाब बनाकर लोगोंको पानी देना राजाका आवश्यक कर्तव्य समझा जाता था। नारदने युधिष्ठिरसे प्रश्न किया है कि 'तेरे राज्यमें खेती वर्षापर तो अवलंबित नहीं है न ? तूने अपने राज्यमें योग्य स्थानोंपर तालाब बनाये हैं न ?' यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि पानी दिये हुए खेतोंकी फल विशेष महत्त्वकी होती थी। उस जमानेमें ऊख, नीलि (नील) और अन्य वनस्पतियोंके रंगोंकी पैदावार भी सींचे हुए खेतोंमें की जाती थी। (बाहरके इतिहासोंसे अनुमान होता है कि उस समय अफीमकी उत्पत्ति और खेती नहीं होती रही होगी।) उस समय बड़े-बड़े पेड़ोंके बगीचे लगानेकी ओर विशेष प्रवृत्ति थी और खासकर ऐसे बगीचोंमें आमके पेड़ लगाये जाते थे। जान पड़ता है कि उस समय थोड़े अर्थात् पांच वर्षोंके समयमें आम्र वृक्षमें फल लगा लेनेकी कला मालूम थी। यह उदाहरण एक स्थानपर द्रोण पर्वमें दिया गया है। 'फल लगे हुए पांच वर्षके आमके बगीचेको जैसे भग्न करें।' इस उपमासे आजकलके छोटे-छोटे कलमी आमके बगीचोंकी कल्पना होती है। यह स्वाभाविक बात है कि महाभारत में खेतीके संबंधमें थोड़ा ही उल्लेख हुआ है। इसके आधार पर जो बातें मालूम हो सकती हैं वे उपर दी गई हैं। + + + किसानोंकी सरकारकी ओरसे बीज मिलता था, और चार महीनोंकी जीविकाके लिए अनाज उसे मिलता था, जिसे आवश्यकता होती थी। किसानोंको सरकार अथवा साहूकारसे जो ऋण दिया जाता था, उसका व्याज फी सैंकड़े एक रुपयेसे अधिक नहीं होता था। खेतीके बाद दूसरा महत्त्वका धंधा गोरक्षाका था। जंगलोंमें गाय चरानेके खुले साधन रहनेके कारण यह धंधा खूब चलता था। चारण लोगोंको बैलोंकी बड़ी आवश्यकता होती थी, क्योंकि उस जमानेमें माल लाने लेजानेका सब काम बैलोंसे होता था। गायके दूध-दहीकी भी बड़ी आवश्यकता रहती थी। इसके सिवा गायके संबंधमें पूज्य बुद्धि रहनेके कारण सब लोग उन्हें अपने घरमें भी अवश्य पालते थे। जब

१. चूतारामो यथा भग्नः पंचवर्षः फलोपगः ।

विराट राजाके पास सहदेव तंतिपाल नामक ग्वाला बनकर गया था, तब उसने अपने ज्ञानका वर्णन किया था ।^१ उससे मालूम होता है कि महाभारत कालमें जानवरोंके बारेमें बहुत कुछ ज्ञान रहा होगा । अजाविक अर्थात् बकरीं भेड़ोंका भी बड़ा प्रतिपालन होता था । “जाबालि” शब्द ‘अजापाल’ से बना । उस समय हार्थी और घोड़ोंके संबंधकी विद्याको भी लोग अच्छी तरह जानते थे । जब नकुल विराट राजाके पास ग्रंथिक नामका चाबुक-सवार बनकर गया था तब उसने अपने ज्ञानका वर्णन किया था ।^२ उसने कहा “मैं घोड़ोंका लक्षण, उन्हें सिखलाना, बुरे घोड़ोंका दोष दूर करना और रोगी घोड़ोंकी दवा करना जानता हूँ ।” महाभारतमें अश्व-शास्त्र अर्थात् शालिहोत्रका उल्लेख है । अश्व और गजके संबंधमें महाभारत-कालमें कोई ग्रंथ अवश्य रहा होगा । नारदका प्रश्न है कि “तू गजसूत्र, अश्वसूत्र रथसूत्र इत्यादि का अभ्यास करता है न ?” मालूम होता है कि प्राचीन कालमें बैल, घोड़े और हाथीके संबंधमें बहुत अभ्यास हो चुका था और उनकी रोगचिकित्साका भी ज्ञान बहुत बढ़ा-चढ़ा था ।^३

महाभारत-मीमांसामें ऊपरकी लिखी बातोंसे यह जाहिर है कि द्वापरके अंत और कलियुगके आरंभवाले समयमें गांवके रहनेवाले किसान सुखी और धनी थे । उनकी दशा आजकल की-सी न थी । उनके पास अन्न-धनकी बहुतायत थी । वे अपना

१. क्षिप्रं च गावो बहुला भवति । न तासु रोगो भवतीह कश्चन ॥

२. अश्वाना प्रकृतिं वेद्मि विनयं चापि सर्वशः ।

दुष्टानां प्रतिपत्तिं च कृत्स्नं च विचिकित्सितम् ॥

३. त्रिःप्रसृतमदः शुष्मी षष्ठिवर्षी मतंगराट् ॥४॥

म-भा. सभापर्व, अ० १५१

साठवें वर्षमें हाथीका पूर्ण विकास अर्थात् यौवन होता है और उस समय उसके तीन स्थानोंसे मद टपकता है । कानोंके पीछे, गंडस्थलोंसे और गुह्य देशमें । महाभारतके जमानेकी यह जानकारी महत्वपूर्ण है । इससे विदित होता है कि उस समय हाथीके संबंधका ज्ञान कितना पूर्ण था ।

उपजाया खाते और अपना बनाया पहनते थे। बकरा, भेड़, आग और धरती बेचनेकी चीजें नहीं थी।^१ जान पड़ता है कि उस समय तक खेतोंके रेहन और बय करनेकी प्रथा नहीं चली थी। इस रीतिका आरंभ चंद्रगुप्तके समयसे जान पड़ता है। उस समय भी यह अधिकार सबको नहीं मिला था। मुसलमानों के समयमें रेहन और बय करनेकी रीति जोरोंसे चल पड़ी, और संवत् १८४४ में तो कंपनी सरकारने नियम बना दिया, कि क़ानूनगोके यहां रजिस्ट्री कराके ज़मींदार अपनी ज़मीन रेहन या बय करा सकता है।

: ३ :

कलजुग का प्रवेश

१. बौद्धकाल

कलजुगके आरंभके हज़ार-डेढ़-हज़ार बरसतक वही दशा समझनी चाहिए जो महाभारतके आधारपर मीमांसामें दी गई है। आजसे लगभग ढाई हज़ार बरस पहले भगवान बुद्धका समय था। गांवके संबंधमें बुद्धमतके ग्रंथोंमेंसे बहुतसी बातें निकली जा सकती हैं। उनसे यह पता चलता है कि भारतका समाज उस कालमें भी देहाती ही था। किसान लोग अपने-अपने खेतके मालिक थे और गांवके किसानोंकी एक जाति-सी बनी हुई थी। अलगायी हुई भारी-भारी रियासतें, ज़मींदारियां या ताल्लुके न थे। एक जातकमें लिखा है कि जब राजा विदेहने संसार छोड़कर संन्यास ले लिया तो उन्होंने सात योजनोंकी अपनी राजधानी मिथिला छोड़ी और सोलह हज़ार गांवका अपना राज छोड़ा। इससे पता चलता है कि सोलह हज़ार गांव-

१. अजोऽग्निर्वरुणो मेघः सूर्योऽश्वः पृथिवी विराट्।

धेनुर्यज्ञश्च सोमश्च न विक्रेयाः कथञ्चन।

—महाभारत

वाले राज्यके भीतर मिथिला नामका एक ही शहर था। उस समय गांवोंके मुकाबले शहरोंकी संख्या इतनी थोड़ी थी कि अगर हम एक लाख गांवोंके पीछे सात शहरोंका औसत मानलें और यह भी मानलें कि आज कलकी तरह सारे भारतमें सात लाखसे ज्यादा गांव नहीं थे तो सारे भारतमें उस समय शहरोंकी कुल गिनती पचाससे अधिक नहीं ठहरती। शहरकी लंबाई-चौड़ाई भी इतनी ज्यादा वर्णनकी गई है कि उसमें न केवल लंबे-चौड़े मुहल्ले शामिल होंगे बल्कि आस-पासके गांव भी जरूर मिल गये होंगे। आज भी हमारे शहरोंमें बड़े-बड़े गांव और कस्बे मिल ही जाते हैं। जातकोंमें गांवोंके रहनेवालोंकी संख्या तीस परिवारोंसे लेकर एक हजार परिवारोंतक थी और एक परिवारकी गिनतीमें दादा, दादी, मां, बाप, चाचा, चाची, बेटे बेटी, बहुएं और पोते, पोती, नाती, नतिनी, जितने रसोईके भीतर भोजन करते थे, सब शामिल थे। जिस तरह आज मिले-जुले परिवार गांवमें रहते हैं उसी तरह पहले भी रहा करते थे; और जैसे आज यह नहीं कहा जा सकता कि हम इतनी ही बड़ी बस्तीको गांव कहेंगे उसी तरह तब गांवकी कोई नपीतुली परिभाषा न थी।^१

जब कभी कोई महत्वके सार्वजनिक काम पड़ते थे तो गांवके सब लोग मिलकर उसमें उचित भाग लेनेका निश्चय कर लेते थे। गांवका एक मुखिया होता था जिसे 'भोजक' कहते थे। भोजकको कुछ कर और दंड मिल जाया करता था। गांवके सब रहनेवाले मिलकर सलाह करते थे। उसमें भोजक भी शामिल होता था। एक जातकमें लिखा है कि बोधिसत्व और गांववाले मिलकर रम्बे और फावड़े लेकर फिरे। गलियों और सड़कोंमें जहाँ कहीं

१. जातक ३।३६५; ४।३३०; विनयपिटक, कुल्ल ५, अध्याय ५।१२;

जातक १।१०६,

पत्थर या रोड़े थे रम्बोंसे निकालकर किनारे लगाते गये और जो बेमौक़े राहमें पेड़ पड़ते थे, जिनसे रथोंके और गाड़ियोंके चलनेमें रुकावट होती थी, उन्हें फरसोंसे काट डाला, ऊंची नीची, उबड़-खाबड़ जगहोंको बराबर कर डाला। उन्होंने सड़कें ठीक कर डालीं, पानीके तालाब बना डाले और एक बड़ा दालान तैयार कर डाला, परन्तु उसकी छतके लिए उनके पास सामान न था। वह एक देवीके पास था, जिससे मोल लेनेको उनके पास धन न था। पर उनके काममें शरीक होने को वह राजी हो गई और उन्हें वह सब सामान मिल गया। इस कथासे यह प्रकट है कि उस समयके धार्मिक नेता भी गांवका सुधार करानेके लिए गांववालोंके साथ मिलकर काम करनेमें शामिल हो जाते थे। साथ ही उस समय गांववालोंके मनमें ऐसा भाव भी था कि अपने खेतमें मोटेसे मोटा काम करनेमें किसी तरहकी हेठी न थी, पर राजाके यहां जाकर बेगार करना नीच काम था।^१

ग्राम जो जनपद एक अंश था, या सीमापर होता था या शहरके पास होता था। उसके चारों ओर खेत और गोचर भूमि, बन और उपवन होता था। आज भी आनन्दबन, प्रमोदबन, सीताबन, वृन्दाबन आदि बनोंके नाम जहां-तहां बस्तियोंमें भी पाये जाते हैं। सारन, चम्पारन, सहारनपुर आदिमें अरण्यका पता लगता है। इन बनों और अरण्योंमें जंगली जानवर और जंगली आदमी भी रहते थे और तपस्वी, संन्यासी अपनी कुटी बनाकर गांवसे दूर रहा करते थे। जंगल प्रायः सबकी सम्पत्ति होती थी। परन्तु कोई-कोई जंगल जो राजधानीसे जुड़े हुए होते थे राजाके अधिकारमें समझे जाते थे। लोग जंगलोंसे लकड़ियां बे-रोक-टोक काट लाते थे और बेचते भी थे। गोचर भूमिमें लोग अपने पशुओंको चरनेके लिए छोड़ देते थे या कोई चरवाहा होता

था जो थोड़ी मजूरी पर सबके पशु चराया करता था और चौमासे भर जंगलोंमें रहता और पशुओंकी रक्षा करता था ।^१

इस कालमें गांवके चारों तरफ कहीं-कहीं दीवारें भी होती थीं और गांवके फाटक भी हुआ करते थे । खेतोंमें बाड़ें लगी होती थीं । जाल भी तने होते थे और खेतोंके पहरेदार भी होते थे और हर गृहस्थकी जोतके चारों ओर नालीसे सीमा बंधी होती थी । नालियां अक्सर सामेकी हुआ करती थी जिनसे दोनों ओर के खेत सामेमें सींचे जाते थे । ये नालियां और गढे, जिनमें पानी इकट्ठा किया जाता था, सभी रूप और आकारके होते थे । यह ठीक पता नहीं लगता कि किस प्रांतमें, औसत जोतका कितना वर्गफल ठहरता था पर जातकोंसे यह पता चलता है कि एक-एक ब्राह्मण के पास हजार-हजार करीबों (बीबों) की खेती थी । एक ब्राह्मण काशी भारद्वाज—के यहां पांच सौ हलोंकी खेती होती थी । और वह मजूरोंसे हल जुतवाता था ।^२

इस युगमें लोग दुख भरे शहरोंमें रहना इस लोक और परलोक दोनोंके लिए बुरा समझते थे । एक जगह लिखा है कि धूल भरे शहरमें जो रहता है वह मोक्ष नहीं पा सकता, और दूसरी जगह लिखा है कि शहरमें कभी पवित्र मंत्रोंका उच्चारण न करना चाहिए^३ । सूत्रोंमें शहरके रहनेवालेके लिए कोई संस्कार, यज्ञ या विधि नहीं दी हुई है । परंतु किसानोंके लिए पद-पद पर रीतियां और विधियां दी हुई हैं । हल जोतनेके समय अश्विनी, सीता,

१. जातक १३१७; ५११०३; १३८८; ३१४६; ३४०१; १२४०; ४३२६; ११६४; १३

२. जातक १२३६; २७६१३५; ३७; ४३७०; १२१५; ११४३१५४; २११०; ४२७७; ४१६७; १३३६; ५४९२; २३५७; १२७७; ३१६२, ३२६३; ४२७६; २१६५३००;

३. आपस्तंब धर्मसूत्र, १३२।२१; बौधायनसूत्र; २।३।६, ३३

अरदा, पर्जन्य, इंद्र और भगके नामसे हवन कराया जाता था। बोलनेके समय, काटनेके समय, दबानेके समय और नये अन्नको लानेके समय यज्ञ कराये जाते थे। यह सब किसानोंकी क्रिया थी बार-बार यह आदेश दिया गया है कि चौरस्तेपर, भिटेपर, बल्मीकों (बांबियों) पर, गांवसे बाहर निकलकर यज्ञ या पूजा करनी चाहिए। यह गांवके रहनेवाले गृहस्थों और विद्वानोंके लिए भी आदेश है। शहरके रहने वालोंके लिए नहीं।^१ अंग्रेजीके (Buddhist India) “बुद्ध कालीन भारत” नामक ग्रंथमें मालूम होता है कि बौद्ध साहित्यसे उस समयके केवल बीस शहरोंका पता तलग है जिनमें से ये छः महानगर कहे गये हैं—श्रावस्ती, चम्पा राजगृह, साकेत, कौशाम्बी और बनारस। कुशीनाराको, जहां बुद्ध भगवानने शरीर त्याग किया है, थेर आनंदने जंगलका एक छोटा-सा कस्बा लिखा है। पाटलीपुत्र अर्थात् आजकलके पटनाका उस समयतक कोई पता नहीं था।

राजको खेतकी उपजमें से वार्षिक दसवां भाग तक कर मिलता था। वह इतनेके लिए ही भूपति समझा जाता था। जो कुछ पैदावार होती थी उसे गांवका मुखिया भोजक या सरकारी कर्मचारी महामात्य या तो खलियानके सामने नाप लेता था या खड़ी फसलको देखकर अटकल कर लिया जाता था। कभी-कभी सरकार इस करको बढ़ाकर किसी-किसी कारणसे आठवां या छठा अंश तक भी करदेती थी। किसी-किसीका यह कर राजा छोड़ भी देता था, या किसी समूह या गांवको मुक्त भी कर देता था। यह तो राजाओंकी बात हुई जिनके कर उगाहनेकी चर्चा पोथियोंमें आई। परंतु पंचायती राज जहां-जहां थे वहां-वहां कर उगाहनेकी कोई चर्चा नहीं है। एकाध जगह पंचायती राजमें चंदेकी तरह कर उगाहनेकी चर्चा भले ही है। एक जगह लिखा है कि मल्लोंके

पंचायती राजमें पंचोंने यह आज्ञा निकाली थी कि जब बुद्ध भगवान् अपनी यात्रामें बस्तीके पास आवें तो हर आदमीको उनका स्वागत करनेके लिए जाना चाहिए । जो न जायगा उसको पांचसौ रुपये दंडके होंगे ।^१ यद्यपि जंगल पर सार्वजनिक अधिकार था तथापि राजाको जब जरूरत पड़ती थी तब वह जंगलकी जमीन को बेच सकता था और वह अपनी जायदादमें खेती करनेवाले मजदूरों और किसानोंसे बेगार भी ले सकता था । कहीं-कहींके किसान गांववाले राजाके लिए हरिणके जंगल घेर रखते थे कि उन्हें समय-कुसमय शिकार हांकनेके लिए काम-धाम छुड़ाकर बुलाया न जाय ।

उस समय मगधके राजमें भूमि बेची नहीं जासकती थी पर दान दी जासकती थी । कासलके राजमें बेची भी जा सकती थी । जिस भूमिमें बाढ़ नहीं लगी होती थी उसमें सब लोग अपने पशु चरा सकते थे, लकड़ी काट सकते थे, फूल चुन सकते थे, फल तोड़ सकते थे । खेतीके नियम कड़े थे, परंतु अच्छे थे और विवेक से भरे थे । मिलिकियत सिद्ध करनेके लिए दस्तावेज (कागज पत्र), गवाह और कब्जा प्रमाण माने जाते थे ।^२

यूनानी लेखकोंसे पता चलता है कि उस समय भी सियारी और उन्हारीकी—रबी और खरीफ की—दो फसलें होती थी और जिस तरह आजकल अनाजकी खेती होती है उसी तरह तब भी होती थी । जो अनाज आज उपजते हैं वही तब भी उपजते थे । गन्नेकी खेती होती थी और खंडसालें चलती थी । इतनी शकर तैयार होती थी कि संसारके बाहरके सभी सभ्य देशोंमें यहांसे

१. विनय पिटक १।२४७

२. जातक ४।२८१; विनयपिटक २।१५८; आपस्तम्ब २।१।२८ (१) १।६।१८ (२०); गौतम १२।२८; १२।१४-१७; वशिष्ठ सूत्र १६।१६

शकर जाती थी ।' सुन्दर और बारीक कपड़े, कपास, ऊन, रेशम छाल आदि सभी तरहके इस सगय भी बनते थे और जंगल की औषधियां और तरह-तरहका माल अब भी उसी, तरह काममें आता था । वाणिज्य-व्यापार उसी तरह बढ़ा-चढ़ा था । जो बातें हम पिछले अध्यायमें लिख आये हैं उन बातोंका, विदेशियोंके बयानसे, इस कालमें बहुत ऊंची अवस्थामें होना पाया जाता है । बौद्ध मतका प्रचार भारतके बाहरके देशोंमें इसी समयमें शुरू हुआ । आना-जाना-बनिज व्यापार पहलेसे ज्यादा बढ़ गया । यहां के बने कपड़े, शकर, चित्रकारी मूर्तियां, हाथी दांतकी बनी सुंदर चीजें, मसाले आदि भांति-भांतिकी वस्तुएं भारतसे बाहर बड़ी मात्रामें जाती थीं और यहांकी सभ्यता और धन सम्पत्तिकी कहानी सुनाती थीं ।

दुर्भिक्षोंके बारेमें जहां अपने यहांके ग्रंथोंमें चर्चा आया करती है वहां मेगस्थनीज जैसे विदेशी कहते हैं कि भारतवर्षमें अकाल कभी पड़ता ही नहीं । इससे यह अटकल लगाई जासकती है कि अकाल पड़ते थे जरूर, परंतु बहुत जल्दी-जल्दी नहीं पड़ते थे । और जहां-कहीं पड़ते थे वहीं उनका प्रभाव रहता था । वह सारे भारतमें फैल नहीं जाते थे ।

२. बौद्धकालका अंत

जो काल बुद्धावतार पर समाप्त होता है जातकोंमें उस कालके संबंधमें एक बड़े महत्त्वकी बात लिखी पाई जाती है । इस समय प्रायः सभी कारीगरी और कलाओंकी पंचायतें संगठित थीं । 'मूग-पक्ख' जातक (४।४११) में इस तरहकी अठारह पंचायतोंकी चर्चा है जिनमें से बड़इयों, लुहारों, खाल सिमानेवालों और चित्रकारों की पंचायतोंका विशेष उल्लेख है । परंतु 'प्राचीन भारतके आर्थिक

१. स्ट्राबो १५सी—६६३, मेगस्थनीज खंड ६ । स्ट्राबो १५ सी ६६० से ६६२ तक ।

इतिहास' (पृ. १०१) में लिखा है—“डाक्टर मजूमदारने इस कालके जातकों और धर्मग्रन्थोंसे पता लगाया है कि इन नौ प्रकारके पेशेवालोंकी पंचायतें संगठित थीं—(१) काठके काम करनेवाले, जिनमें नाव बनानेवाले शामिल थे (२) धातुके काम करनेवाले, जिनमें सोना-चांदी साफ़ करनेवाले शामिल थे (३) माली (४) चित्रकार (५) बनजारे (६) साहूकारी करनेवाले (७) खेती करनेवाले (८) व्यापार करनेवाले (९) पशु-पालन करनेवाले।”^२ एक जातकमें (२।१८) लिखा है कि एक जगह लकड़ीके कामका भारी केंद्र था जिसमें एक हजार परिवार रहते थे। इनकी दो बराबर-बराबर पंचायतें थी और हर पंचायतका सरपंच जेटुक कहलाता था (जेटुकका अर्थ है बड़ा भाई)। “.....इन पंचायतोंमें तीन विशेषतायें थी। (१) सरपंच एक जेटुक होता था (२) पेशा अपने कुलका चलता था और (३) धंधा अपनी जगहमें बंध जाता था, (या यों कहना चाहिए कि खास खास धंधोंके लिए खास-खास जगहें प्रसिद्ध हो जाती थीं।) जातकोंसे मालूम होता है (२।१२।५२ और ३।२८१) कि पंचायतका सरपंच राज-दरबारमें रहनेवाला एक बड़ा मंत्र होता था। जेटुकके सिवाय सरपंचको ‘पमुक’ (प्रमुख या सभापति)” भी कहते थे।

बनारसके राजकी यह विशेषता मालूम होती है कि उस समय पंचायतके सरपंच काशिराजके बड़े कृपापात्र होते थे। एक सरपंच तो सारे राज्यका कोषाध्यक्ष ही था।^३ ऐसा अनुमान होता है कि उस समय जो थोड़ेसे बड़े-बड़े शहर थे उनके आसपासके गांवमें कारीगरी और कलाओंके काम बढ़े-चढ़े थे। रोजगार इतना बढ़ गया था कि शहरके पासके गांवोंमें किसान लोग खेतीके सिवाय हाथकी कलाओंमें भी दक्ष हो गये थे। हम जातकोंमें बारंबार ऐसे

१. जातक ६।४२७, जातक ४१५, जातक २।२६५

२. गौतमके सूत्र ११।२१

३. जातक ३।३८७; जातक २।१२।५२

गांवोंका वर्णन पाते हैं जैसे लुहारोंके गांव जिनमें एक हजार घर लुहारोंके ही थे। इसी तरह ऐसे गांव भी थे जिनमें पांच-पांच सौ घर बढ़इयोंके थे। इसी प्रकार कुम्हारोंके भी गाँवके गाँव बसे हुए थे। इसी तरह व्याधगाम, निषाधगाम इत्यादि पेशेवरोंके नामसे भी गाँव बसे थे।^१ इन गाँवोंके पेशेवाले शहरमें रहने-वाने पेशे बातोंसे भिन्न थे। वे कितान भी थे और लुहारी भी करते थे। बढ़ई भी थे और खेती भी करते थे। खेतीके काममें उनका सारा समय नहीं लगता था। वे खेतीका सारा काम अपने हाथोंसे करते थे तो भी उन्हें पेशेका काम करनेके लिए काफी समय मिल जाता था, और जिनका पेशेका कारबार बहुत बढ़ा हुआ था वे मजूरोंसे काम लेते थे। जान पड़ता है कि उस समय बेकारीकी बीमारी न थी।

ये पंचायतें कानून बनाती थी, मुकदमे फैसले करती थी और जो कुछ फैसला होता था, उसको व्यवहारमें लाना भी उन्हींका काम था। विनयपिटकमें लिखा है कि किसी चोर स्त्रीको तबतक संन्यासिनी बनाये जानेका अधिकार नहीं है जबतक पंचायतोंकी ओरसे आज्ञा न मिल जाय। जो लोग पंचायतमें शामिल होते थे उनके घरेलू झगड़े भी, स्त्री-पुरुषका वैमनस्य भी, पंचायतके सामने आता था और पंचायत निबटारा करती थी।^२

किसी लेखसे ऐसा नहीं मालूम होता कि उस कालमें खेतीका काम कोई स्त्रीच काम समझा जाता हो। खेती करनेवाला अपने समाजमें खेती करनेके कारण अपमानित नहीं समझा

१. जातक ३।२८१-६; जातक २।१८।४०५; जातक ३।३७६।५०८
जातक ६।७१; ३।४६,

२. विनयपिटक ४।२२६; गौतम ११।२१,

जाता था। इसमें तो संदेह नहीं है कि खेती, व्यापार और पशु-पालन वैश्योंका ही काम था और जो ब्राह्मण पुरोहितीका काम करते थे या जो पढ़ानेका काम करते थे खेती नहीं करते थे। पर ऐसे ब्राह्मण भी थे, जो न तो पुरोहितीका काम जानते थे और न विद्या ही पढ़े होते थे। ऐसे ब्राह्मणोंके लिए सबसे उत्तम काम खेती थी, मध्यम काम बनियई थी। सेवाका काम सबसे नीच काम था और भीख तो वही मांगता था जो गया गुजरा अपाहिज था। क्षत्रियका काम भी राजदरबार या सेना और पुलिसका था। परंतु जिन्हें इस तरहका काम न मिलता था वे लाचार होकर वैश्य या शूद्रका काम करने लग जाते थे। राजा ययातिकी कथा सतजुगकी है। यह प्रसिद्ध है कि उन्होंने अपने कई बेटोंको राज-के कामसे अनधिकारी बना दिया। उनके वंशवाले लाचार होकर वैश्य और शूद्रका काम करने लगे। नंद और वृषभानु आदि गोपालक ऐसे ही अधिकारहीन किये हुए यादव थे। परंतु वैश्य द्विजाति थे और द्विजातियोंके सभी अधिकार इन्हें प्राप्त थे और जो ब्राह्मण या क्षत्रिय जन्म से यह (वैश्योंका) काम करने लगते थे उन्हें कोई नीच नहीं समझता था। उनका सम्मान भी ब्राह्मण और क्षत्रियकी तरह ही होता था।^१ यद्यपि ये ब्राह्मणत्व और क्षत्रियत्वसे गिरे हुए समझे जाते थे तो भी वैश्योंका काम उठा लेनेसे कोई उन्हें ताने नहीं देता था और किसी तरहका अपमान नहीं होता था। जातकों और सूत्रोंमें ऐसे ब्राह्मणोंकी चर्चा बहुत आई है जो खेती करते हैं, गौएँ चराते हैं, बकरीका रोजगार करते हैं, बनियेका काम करते हैं, शिकार खेलते हैं, बढ़ई और लुहारका काम करते हैं, जुलाहेका काम करते हैं, बाण चलाते हैं, बनजारोंकी रक्षा करते हैं, रथ हांकते हैं और संपेरेका काम करते

हैं।^१ इस तरहके ब्राह्मणों और क्षत्रियोंके वंशवाले उस समयके वैश्य और शूद्र वंशवालों से ऐसे मिलजुल गये और रोटी-बेटीका ऐसा घना संबंध हो गया कि आज इन पेशेवालोंमेंसे यह भेद करना मुश्किल हो गया है कि कौन ब्राह्मण है, कौन क्षत्रिय है और कौन वैश्य। यह भेद तो उन्हीमें देखा जाता है जो हालके ही पतित हैं। अनगिनतियों ब्राह्मण और क्षत्रिय आज किसानका काम करते हैं और अपनेको किमान कहने और मानने में उन्हें उचित गर्व है, वे उसे पतन नहीं मानते। उस कालमें भी यही भाव सबसे ऊपर था। कही-कही ब्राह्मण किसान बड़ा पवित्र-आत्मा और भक्त समझा जाता था। एड़ीसे चोटीतक बोधिसत्व गिना जाता था।^२ “उत्तम खेती, मध्यम बान; निर्धिन सेवा भीख निदान” यह आजकलकी प्रसिद्ध कहावत उस समय भी ब्राह्मणों और क्षत्रियोंके लिए राह दिखानेवाली थी।

उस कालमें मजूर या शूद्र दो तरहके थे। एक तो किसान आप ही मजूरी करते थे, दूसरे वह मजूर भी थे जिनके पास खेत न थे। जो मजूरी या नौकरीके सिवाय जीविकाका और कोई उपाय न रखते थे, वे लकड़ी काटते थे, पानी भरते थे, हल जोतते थे और सेवाके सब तरहके काम करते थे। बड़े-बड़े खेतिहर अपने यहां मजूर रखकर खेतीका काम कराते थे। मजूरी सब तरहकी दी जाती थी। भोजन कपड़ा और रुपये सबकी चाल थी। इन दो प्रकारोंके सिवाय मजूरोंका एक तीसरा प्रकार भी था। क़ैदी, ऋणी और प्राणदंडके बदले काम करनेवाले और अपने आप अपनेको बेच देनेवाले या न्यायालयसे दंड

१. जातक २।१६५; ३।२६३; ४।१६७-२७६।; ३।४०१; ४।१५;
५।२२-४७१; २।२००; ६।१७०; ४।२०७; ४५७; ५।१२७;

२. जातक ३।१६२

पाकर काम करनेवाले दास या दासी अपनी मियाद भर या जीवन भर गुलामी करते थे। परंतु ऐसे लोगोंकी गिनती भारत-वर्षमें बहुत न थी। साधारण मजूरोंकी अपेक्षा इन दासोंके साथ बर्ताव भी अच्छा ही होता था। इनका लाड़-प्यार होता था। इन्हें लिखना-पढ़ना और हाथकी कारीगरी भी सीखनेका मौका दिया जाता था। कभी-कभी किसीके द्वारा इनके साथ कड़ाईका बर्ताव भी होता होगा, ऐसा प्रतीत होता है। दास जबतक मुक्त नहीं हो जाता था, तबतक धर्मसंघ में वह सम्मिलित नहीं होने पाता था। शायद इसलिए कि इससे उसके मालिकके काममें हर्ज होता। इन दासों और दासियोंको अपने जीवनसे असंतोष नहीं था क्योंकि इनके भाग जानेकी चर्चा कहीं नहीं पाई जाती।^१ नित्यकी मजूरी करनेवाला किसीका गुलाम तो नहीं होता था तो भी कभी-कभी ऐसे मौके आजाते थे कि उसका जीवन गुलामोंकी अपेक्षा अधिक कठिन हो जाता था।^२

उन दिनों रहन-सहनका खर्च कैसा था यह कहना तो मुश्किल है। परंतु जातकोंसे यह पता लगता है कि एक धेलेके तेल या घीसे आदमीका काम भरपूर चल सकता था। आठ कढ़ पानमें एक अच्छा गधा खरीदा जा सकता था। चौबीस मुद्राओंमें एक जोड़ी बैल मिल जाते थे। अर्द्धमासक आजकलके धेले या पैसेके बराबर समझा जाय और कहपान या कार्षपण अठन्नी के बराबर माना जाय और उपर्युक्त मुद्रायें एक-एक रुपयेके बराबर मानी जायें तो उस समयका खर्च आजकलकी अपेक्षा बहुत सस्ता समझा जायगा। परंतु यह बात अनुमानके आधारपर है। सिक्के

१. जातक १।४५१; मज्झिम निकाय १।१२५; जातक १।४०२
विनयपिटक १।७६, जातक ५।३१३, ६।५४७

२. जातक १।४२२; ३।४४४

का वास्तविक मूल्य कब कितना समझा जाना चाहिए, यह अर्थ-शास्त्रका एक जटिल प्रश्न है। इसपर यहां विचार करना हमारा उद्देश्य नहीं है।

: ४ :

चाणक्यके समयके गांव

इतिहास लिखने वालोंके निकट बुद्धकालका अंत उस समय समझा जाता है जब चन्द्रगुप्त मौर्य गद्दी पर बैठा और शासनकी असली बागडोर चाणक्यके हाथमें आई। इस प्रकांड पंडितने 'अर्थशास्त्र' नामकी एक पुस्तक लिखी। इस पोथीसे उस कालके बारेमें पता लगता है जिसमें मौर्य वंशका राज हुआ था और जो विक्रमके एकसौ तीस बरस पहले समाप्त होता है। 'अर्थशास्त्र' से मालूम होता है कि गाँवोंके कई तरहके विभाग किये गये थे। प्रथम कोटि, मध्यम कोटि और सबसे नीची कोटिके सिवाय ऐसे भी गांव थे जिन्हें अन्न, पशु, सोना, जंगलकी पैदावार आदि किसी रूपमें कोई कर नहीं देना पड़ता था। ऐसे भी गांव थे जहां से करके बदले बेगार मिलती थी और ऐसे भी थे जिनसे करके बदले दूध, दही, घी, मक्खन आदि मिलते थे। कुछ बातोंमें तो सभी गांव समान थे। हर गांवमें बड़े-बूढ़ोंकी एक पंचायत होती थी। इस पंचायतका जो कोई सरपंच होता था वही सरकार की ओरसे गांवका मुखिया माना जाता था। जमींदारीका कोई रिवाज नहीं था। हर किसान अपने खेतका मालिक था। गांवमें घर सब एक साथ लगे होते थे बीचमें गलियां होती थी। बस्ती के चारों ओर बहुत दूरतक फैली हुई नाजकी, विशेष रूपसे, धान-

१. अर्थशास्त्र (पंडित प्राणनाथ विद्यालंकारका उल्था) पृष्ठ १२६, ३६-४१।

की खेती होती थी। हर गांवसे मिली हुई पशुओंके चरनेके लिए गोचर भूमि होती थी जिसका बंदोबस्त राजाको करना पड़ता था। गृहस्थोंके अपने-अपने पशु अलग होते थे, पर गोचर भूमि सबकी एक ही होती थी। इसी गोचर भूमिमें वे खुले हुए मैदान भी होते थे, जिनमें बनजारे और घूमनेवाली जंगली जातियां आकर ठहर जाती थीं और आये दिन डेरे डाला करती थी।^१ गांवकी हद्दे बंधी हुई थी। हर गांवमें चौपाल और दालानें पंचायतों के कामके लिए बनी होती थी और गांवका भीतरी अर्थशास्त्र बिल्कुल स्वतंत्र होता था। गांवके भीतरी बंदोबस्त में किसी बाहरी का हाथ बिल्कुल नहीं होता था। गांववाले सब बातोंका निबटारा आप कर लेते थे। घूमनेवाली जातियों या चरवाहोंकी बस्तियां न तो बहुत कालके लिए टिकाऊ होती थी और न गांवकी तरह सुसंगठित। गोचर भूमि और गोरक्षा उस समयमें ऐसे महत्व की बात समझी जाती थी कि खेतीके अध्यक्षकी तरह राजदरबार में गोशालाके अध्यक्ष अलग और गोचर भूमियोंके अध्यक्ष अलग होते थे।^२ गोशालाके अध्यक्षको न केवल गाय भैंसकी ही खबर लेनी होती थी, बल्कि भेड़, बकरियां, गधे, सुअर, खच्चर और कुत्तोंके लिए भी बंदोबस्त करना पड़ता था।

गांव बसानेके मंत्रधर्मों कौटिल्यके अर्थशास्त्रमें जो नियम दिये हुए हैं उनसे बहुत कुछ पता चलता है। यहां हम पंडित प्राणनाथजीके अनुवादसे (पृ० ३६-४१) नीचे जो अवतरण देते हैं, उससे उस समयके गांवकी राज्य-व्यवस्थाका पता लगता है:--

“परदेश या स्वदेशके निवासियोंके द्वारा शून्य या नवीन जन-पदको बसाया जाय। प्रत्येक ग्राम सौ परिवारसे पांचसौ परिवारतक का हो। उसमें शूद्र कृषकोंकी संख्या अधिक हो और उनकी सीमा एक कोससे दो कोसतक

१. मेगस्थनीज (अंग्रेजी १, ४७)

२. अर्थशास्त्र पृ० ११५-१६, १२८

विस्तृत हो। वह इस प्रकार स्थापित किये जायं कि एक दूसरेकी रक्षा कर सकें। नदी, पहाड़, जंगल, पेड़, गुहा, नहर, तालाब, सींभल, पीपल तथा बड़ आदिसे उसकी सीमा नियत की जाय। आठसौ ग्रामोंके मध्यमें स्थानीय, चारसौ ग्रामोंके मध्यमें द्रौणमुख, दोसौ ग्रामोंके मध्यमें खर्बटिक तथा दस ग्रामोंके मध्यमें संग्रहण नामक दुर्ग बनाये जायं। राष्ट्र-सीमाओंपर अंतपालके दुर्ग खड़े किये जायं और प्रत्येक जनपद-द्वारा उसके द्वारा सुरक्षित रखा जाय। वागुरिक, शबर, पुलिन्द, चंडाल तथा जंगली लोग शेष सम्पूर्ण सीमाकी देख-रेख करें।

ऋत्विक्, आचार्य, पुरोहित तथा श्रोत्रियोंको अभिरूप फलदायक ब्रह्मदेय^१ दिया जाय और उनको राज्यदंड तथा राज्य करसे मुक्त किया जाय। अध्वर्यू, संख्यायक, गोप, स्थानीक, अनीकस्थ, चिकित्सक, अश्व दमक, जंघारिक, आदि राज-सेवकोंको भूमि दी जाय परन्तु उनको यह अधिकार न हो कि वह उसको बेच सकें या थाती (गिरवी) रख सकें। राजस्व देनेवालोंको ऐसे खेत दिये जायं जोकि एक पुरुषके लिए पर्याप्त हों। खेतिहरोंको नई भूमि न दी जाय। जो खेती न करें उनसे खेत छीनकर अन्योके सिपुर्द किये जायं। ग्राम-भृतक या बनिये ही उनपर खेती करें। जो खेत जोतें वे सरकारी हजाना (अपहीन) भरें। जो सुगमतासे राजस्व दें उनको धान्य, पशु तथा हिरण्य से सहायता पहुंचाई जाय। साथ ही खयाल रखा जाय कि अनुग्रह^२ तथा परिहार^३से बोवकी वृद्धि हो और

१. ब्रह्मदेय वह दान है जोकि ब्राह्मणोंको स्थिर रूपसे सदाके लिए दे दिया जाय। ताम्रपत्र तथा ब्रह्मदेयसे शिलालेख खोदनेसे मिले हैं जिनमें पुराने राजाओंने भिन्न-भिन्न भूमि भागोंको ब्रह्मदेयके रूपमें ब्राह्मणोंको दिया था। (प्राणनाथ विद्यालंकार)।

२. अनुग्रह—उत्तम काम करनेके बदलेमें कारीगरों—किसानोंको राजा जो धन आदि इनाममें दें उसको 'कौटिल्य'ने 'अनुग्रह' शब्दसे सूचित किया है। (प्रा० वि०)

३. परिहार—राज्य करसे मुक्त करना। पुत्रोत्पत्ति, वर्षगांठ आदि

जिससे कौषके नुकसानकी संभावना हो उसको न किया जाय । क्योंकि अल्प कौषवाला राजा नागरिकों तथा ग्रामीणोंको ही सताता है । नये बंदोबस्त या अन्य आकस्मिक समयमें ही विशेष-विशेष व्यक्तियोंको राजस्व से मुक्त किया जाय और जिनका राज्यकर-मुक्ति या परिहारका समय समाप्त हो गया है उनपर पिताके तुल्य अनुग्रह रखा जाय ।'

मौर्यकालमें भी देशका सबसे बड़ा कारबार खेतीका था । इसपर सरकारका बहुत बड़ा ध्यान था । सब तरहके अनाज तो उपजते ही थे साथ ही गन्नेकी खेती बहुत ज़ोरोंसे होती थी । गुड़, खांड, मिश्रो सभी कुछ तैयार होता था । अंगूरसे भी एक प्रकारका मोठा तैयार किया जाता था जिसे मधु कहते थे । खांड तैयार करने के लिए गांव-गांवमें खंडसालें थी ।' शकरका रोज़गार बढ़ा-चढ़ा था । मेगेस्थनीज़ लिखता है :—

भारतवर्षमें बड़े लंबे-चौड़े अत्यंत उपजाऊ मैदान हैं जो खेतोंसे हरे-भरे दीखते हैं और जिनकी सिचाईके लिए नदियोंका जाल-सा बिछा दीखता है.....जौ, गेहूं, चावल आदिके सिवाय ज्वार, बाजरा और अनेक प्रकारकी दालें और मनुष्य और चौपायोंके भोजनके योग्य नाना प्रकारके पौधे होते हैं जाड़ोंमें और गर्मियोंमें दो बार बरसात होती है और सालमें दो फसलें होती हैं । विविध प्रकारके स्नाद और मिठासके कंद, मूल और फल होते हैं जिनसे मनुष्यों का बहुतायतसे पोषण हो सकता है.....। बुरे-से-बुरे युद्धमें भी किसानोंकी कोई हानि नहीं होती; फसल को, पशुओंको, खेतोंको या पेड़ लतादिको कोई नुकसान नहीं पहुंचता । भारतके किसान बड़े मिहनती होते हैं, किफायतसे रहते हैं और ईमानदार होते हैं । सरकारी प्रबंध ऐसा अच्छा है कि खेतीका व्यापार बड़ी अच्छी समयमें राजा लोग ऐसा करते थे, कौटिल्यने इन सब समयोंको 'यथागतक' शब्दसे सूचित किया है । (प्रा० वि०)

दशमें है। जन, धनकी पूरी रक्षा है, न्याय और कानून बड़े अच्छे हैं”।

मेगस्थनीज के लेखसे मालूम होता है कि सिंचाईका प्रबंध बड़ा ही उत्तम था। नहरोंका भी एक विभाग था, अर्थशास्त्रसे भी इस बातका पूरा समर्थन होता है कि सिंचाईका सरकारी प्रबंध था, और जिन लोगोंको सरकारकी तरफसे जल मिलता था उसके लिए कर देना पड़ता था। खेतीके लिए एक सरकारी अफसर अलग था, वह सीताध्यक्ष कहलाता था। उसके लिए अर्थशास्त्र पृष्ठ १०४ में लिखता है:—

“सीताध्यक्ष (कृषिका अध्यक्ष या प्रबन्धकर्ता) कृषि-विज्ञान, गुल्म-शास्त्र (भाड़ियोंकी विद्या), वृक्ष-विद्या तथा आयुर्वेदमें पांडित्य प्राप्त कर, या उन लोगोंसे मैत्री कर, जोकि इन विद्याओंमें पंडित हैं, धान्य, फूल-फल शाक, कंद, मूल, पालक, सन, जूट, कपास, बीज आदि समयपर इकट्ठा करे। बहुत हलोंसे जोती हुई भूमिपर दास, कर्मकर, अपराधी आदियों से बीज डलवाये और हल, कृषि संबंधी उपकरण तथा बैल उनको अपनी ओरसे दे तथा काम हो जानेके बाद लौटा ले। तरखान (कर्मार) खटीक तेली, रस्सी बटनेवाले, बहेरिये लोगोंसे उनको सहायता पहुंचाये। यदि काम ठीक न हो तो उनसे हरजाना वसूल किया जाय।”

कताई और बुनाईका काम भी मौर्यकालमें कोई छोटे पैमाने पर नहीं होता था। जिस तरह खेतीके विभागके लिए सरकारी अफसर सीताध्यक्ष होता था, उसी तरह कताई-बुनाईके कामपर एक सरकारी अफसर सूत्राध्यक्ष नियुक्त होता था। वह कारीगरों से सूत, कपड़ा और रस्सीका काम भी करवाता था। उसका काम था कि वैरागिनों, विधवाओं, विकलांग लड़कियों, राज्य दंडितों बूढ़ी राजदासियों और मंदिरके कामसे छुटी देवदासियों और साधारणतया सभी लड़कियोंसे ऊन, रेशे, रुई, जूट सन आदि-

१. ‘प्राचीन भारतका इतिहास’ नामक ग्रन्थमें पृ० १३६ परका अवतरण।

के सूत कतवाये और सूतकी चिकनाहट, मुटाई और उत्तम, मध्यम निकृष्ट दशा देखकर उनका मिहनताना नियत करे। इसतरह सूत की कताईके लिए, उसकी ठीक जांचके लिए और ठीक-ठीक मजूरी देनेके लिए बड़े विस्तारसे नियम बने हुए थे।^१ और इसके संबंधमें अपराधियोंके लिए बड़े कड़े-कड़े दंड भी थे, जैसे जो मेहनताना लेकर काम न करें उनका अंगूठा काट दिया जाय। यही दंड उनको भी मिले जोकि माल खा गई हों, लेकर भाग गई हों या चुरा ले गई हों। जान पड़ता है कि कताईके ये नियम राजधानीके पासके गांवके हैं जिनका सरकारी विभागसे कपास रुई और मजूरी पानेका बंदोबस्त था और यह कानून उन लोगोंके लिए था जो उस सरकारी विभागके लिए कातनेको बाध्य किये जा सकते थे। परंतु औरोंको कातनेकी मनाई न थी। शहर से दूसरे गांव में रहनेवाले लोग, बूढ़े, जवान, बच्चे सभी कातते होंगे। क्योंकि पहले तो पहननेके लिए कपड़े सारी आबादीको चाहिए और दूसरे भारतके बाहरसे कपड़ें आनेकी कही चर्चा नहीं है। इसलिए कताई बुनाईका काम अवश्य ही गांवमें घर-घर होता था। सरकारी तौरसे इन कताका प्रबंध यह प्रकट करता है कि कताई और बुनाईका रोजगार खेती-बारीकी तरह भारी महत्त्व रखता था। उस समय यह भी कानून था कि किसीके पास खेत हों, और वह खेती न करता हो तो उससे खेत लेकर खेती करनेवालेको दे दिये जायं। इससे कोई बेकार खेत न रख सकता था।

कोष्ठगाराध्यक्षके कर्तव्योंकी तालिकासे^२ पता लगता है कि उस समय खेतीके कारबारके साथ ही साथ खंडसालके सिवाय जिसकी चर्चा हम कर चुके हैं, तिलहनोसे तेल निकालनेका काम बहुत जोरोसे होता था। रंगका कारबार भी बहुत बड़ा-चड़ा था।

१. कौटिल्य अर्थशास्त्र पृ० १०२, १२३

२. कौटिल्य अर्थशास्त्र (पं० प्राणनाथ) पृ० ८४ से ८८ तक

यूनानी लेखकोंसे पता चलता है^१ कि लाख आदि कीड़ों से पैदा होनेवाले रंग भी उस समय निकाले जाते थे और कपड़े रंगनेके सिवाय लोग अपनी दाढ़ियां भी विविध रंगों में रंगते थे। कुम्हार लोग बड़े उत्तम-उत्तम प्रकारके बासन बनाते थे। बंसफोर बांस और बेंत और छालके सब तरहके सामान तैयार करते थे। नदी किनारेके गांवमें धीमर मछलियां मारते थे और समुद्रके किनारे मोती और शंख खोज लाते थे। सूखी मछलियां और सूखे मांसके व्यापारकी चर्चासे यह भी पता लगता है कि ये चीजें बिकने के लिए बहुत दूर-दूर भेजी जाती होंगी। उस समय आटा भी गांवसे पिसकर शहरमें बड़े भारी परिमाणमें बिकनेको आता होगा।

पंचायतोंका संगठन उस समय इतने महत्त्वका था कि उसके लिए संघ वृत्त नामका एक अधिकरण ही अर्थशास्त्रमें अलग रखा गया है। इस अधिकरणके पढ़नेसे^२ यह जान पड़ता है कि उस समय संघोंके अधिकार बहुत बढ़े हुए थे। छोटी छोटी पंचायतों को एकत्र करके लं गोने संघ बना रखे थे। लिखा है कि कंबोज, सुराष्ट्र, क्षत्रिय, तथा श्रेणी आदि संघ खेती, पशु-पालन और बनजसे संतुष्ट रहते थे और शस्त्रकी जीविका भी करते थे, अर्थात् सिपाहीका काम भी करते थे। लिच्छविक, वृश्चिक, मद्रक कुक्कर, कुरु, पांचाल आदिके संघ भी थे। इनके बारे में यह लिखा है कि ये लोग राजा शब्दसे संतुष्ट रहते थे। आगे चलकर भेद-नीतिका वर्णन किया है, जिससे पता चलता है कि कम्बोज, सुराष्ट्र आदि बड़ी चतुर जातिके थे। लिच्छविक आदि नामपर मोहित हो जाते थे। राजा स्वभावतः इन पंचायतोंको निर्बल रखनेमें अधिक कल्याण समझता था। इसीलिए फोड़-फांस लगाये रहता

१. नियारकोस (अंग्रेजी) खंड ६ व १०।

२. अर्थशास्त्र (प्रा० वि०) पृ० ६५ से ३६१ तक

था। भेद-नीतिका विस्तार करके लिखा है कि जब वह आपसमें जुदा हो जाय तो उनको तितर-बितर करदे। या सबको एक ही देशमें बसाकर उनके पांच-पांच या दस-दस परिवार (कुल) को जोतने-बोनेके लिए जमीन दे-दे। राजा शब्दसे संतुष्ट होनेवालों का राजपुत्रोंके अनुरूप शासन बनावे।

राजाको जब आवश्यकता होती थी या जब इसमें वह देश-का कल्याण देखता था तो वह नये गांव बसाता था और नई गोचर-भूमि छुड़वाता था। किसी-किसी गांवको शुद्ध शूद्र गांव बना देता था और किसीमें केवल ब्राह्मणोंको बसाकर उनसे खेती कराता था। इस संबंधमें हम एक लंबा अवतरण दे आये हैं। इसपर साधारणतया यह अनुमान किया जाता है कि शूद्रोंको धीरे-धीरे ऊपर उठाकर वैश्य बनाने और ब्राह्मणोंको धीरे-धीरे नीचे उतारकर खेतिहर बनानेमें राजाका भी हाथ था। आज जो भारी संख्यामें ब्राह्मण, क्षत्रिय, और शूद्र भी खेतीमें लगे हुए हैं, उनका जहां प्रधान कारण भारतवर्षमें एकमात्र खेतीके व्यवसायका प्रधान होना है, वहां एक गौण कारण यह भी है कि समय-समयपर राजा वैश्यके सिवाय और वर्णोंको भी खेतीके काममें लगा देनेमें सहायक होता था।

मजूरों और गुलामोंकी दशा भी बड़ी अच्छी थी। अर्थशास्त्र में यह नियम दिया गया है कि जिस मजूरसे कोई मजूरी पहले से तय न की जाय उसे “मजूरी काम तथा समयके अनुसार दी जाय। खेतीहरोंमें हरवाहे, गऊओंका काम करनेवालोंमें ग्वाले और अपना माल खरीदनेवाले बनियों में दूकान पर बैठनेवालों में मेहनताना तय न होनेपर आमदनीका दसवां भागग्रहण करें।” मजूरीके नियम ऐसे सुंदर और नीतियुक्त बनाये गये थे कि काम करनेवाला और करानेवाला दोनोंमें से किसीका हक नहीं मारा

जाता था। दासोंके नियम भी बड़े अच्छे थे। इनमें मनुष्यता की रक्षा थी। लिखा है—

“उदर दासको छोड़कर, आर्य जातिके नाबालिग शूद्रको बेचनेवाले संबंधीको १२ पण, वैश्य, क्षत्रिय तथा ब्राह्मणको बेचनेवाले स्वकुटुंबीको क्रमशः २४, २६, ४८ पण दंड दिया जाय। यदि यही काम करनेवाला कोई दूरका रिश्तेदार या दुश्मन हो तो उसको भेता तथा श्रोताको पूर्व, मध्यम तथा उत्तम साहप दंडके साथ-साथ मृत्यु दंडतक दिया जा सकता है। म्लेच्छ लोग प्रजा बेच सकते हैं तथा गिरों रख सकते हैं। आर्य लोग दास नहीं बनाये जा सकते हैं। पारिवारिक, राज्यदंड तथा उत्पत्तिके साधन विषयक आपत्तिके आ पड़नेपर किसी भी आर्य जातिके व्यक्तिको गिरों रखा जा सकता है। निष्क्रयका धन मिलते ही सहायता देनेमें समर्थ बालकको शीघ्र ही छुड़ा लिया जाय। एक बार जिसने अपने आपको गिरों रखा है या जिसको संबंधियों ने दो बार गिरों रखा है, राज्यापराध करने पर या शत्रुके देशमें भागनेपर वह आजीवन दास बनाया जा सकता है। धनको चुरानेवाले या किसी आर्यको दास बनानेवाले व्यक्तियोंको आधा दंड दिया जाय। राज्यापराधी, मृतप्राय तथा बीमारको भूलसे गिरों रखनेवाला अपना धन लौटा ले सकता है। जो कोई गिरोंमें रखे व्यक्ति से मर्दा या पाखाना पेशाब उठवाये, या उसको जूठा खिलाये, या कपड़े पहननेको न देकर नंगा रखे, या पीटे या तकलीफ दे या स्त्रीका सतीत्व हरण करे उसका (गिरों रखनेके बदले दिया गया) धन जब्त कर लिया जाय। दायी, दासी, अर्धसोरी तथा नौकरानी सदाके लिए स्वतंत्र करदी जाय और उच्चकुल के मनुष्यको उसके घरसे भाग जाने दिया जाय।”

मजूरोंके भी संघ थे। और देशमें पूंजीवाले लोग भी ज़रूर थे। खेतिहर और बनिये मिलकर अपने व्यापार संघ बनाते थे और मजूर लोग मिलकर अपने-अपने मजूरसंघ स्थापित किये हुए थे। जहां दोनोंके संबंधके नियम दिये गए हैं वहां मजूरोंकी पंचा-

अत (संघ भृताह) के लिए भी नियम हैं। इन सब बातोंसे पता लगता है कि उस समय मिलजुलकर संघ शक्तिसे काम लेनेकी चाल बहुत कालसे दृढ़ हो चुकी थी।

सिक्कोंका चलन भी उस समय निश्चित था। सोने और चांदी दोनोंके सिक्के चलते थे। तांबेके सिक्के भी थे। रुपया पण कहलाता था। अठन्नी, चौअन्नी, दुअन्नी भी चलती थी। तांबेके अधन्ने, पैसे, धेले आदि भी चलते थे, जिन्हें माषक, अर्द्धमाषक, कार्किणी और अर्द्धकार्किणी कहते थे।^१ इन सिक्कोंके सिवाय व्यापारी लोग एक दूसरेपर हुंडी भी चलाते थे। और इसमें तो तनिक भी संदेह नहीं है कि गांवमें अदला-बदलीका नियम पहलेकी तरह जारी था। गांवके लोग इतने सुखी थे कि चौपलोंमें और पंचायतोंके दलानोंमें अक्सर नाटक हुआ करते थे। नाचने और गानेवाले आकर गांववालोंका मनोरंजन किया करते थे। अर्थशास्त्रकारने इस बातको बहुत बुरा बतलाया है क्योंकि इससे गांववालोंके घरेलू और खेतके काम धंधोंमें बड़ा हर्ज पड़ता है।

प्रोफेसर संतोषकुमार दास लिखते हैं कि इस कालमें गांवके रहनेवालोंको आजकलके हिसाबसे अमीर तो नहीं कहा जा सकता, परंतु इसमें संदेह नहीं कि उनकी जितनी सीधी-सादी जरूरतें थी, सब सहजमें पूरी होती थी। मेगस्थनीज लिखता है कि लोग बहुत सीधी चाल-ढालके थे। स्वभावके संयमी थे। और गहने-पाते काममें तो जरूर लाते थे परंतु उनका पहिरावा बहुत सादा था। एक सूती धोती, कंधेपर चदर, सफेद चमड़ेके जूते एक भले मानसके काफ़ी सामान थे। निर्धन और दरिद्र भी होते

१. डाक्टर शामशास्त्रीकी रायमें (अंग्रेजी अर्थशास्त्र पृ० १८) 'रूप्य रूप' और कर्शपण एक ही चीज़ है। यहां पर रुपयेके लिए पण शब्दका प्रयोग हुआ है।

थे, परंतु उनकी गिनती अत्यंत कम थी। और वे थोड़ेसे निर्धन भी सरकारी आश्रयमें रहते थे। अर्थशास्त्रके अनुसार “राजाका कतः था कि बूढ़े, अपाहिज, पीड़ित और लाचारका पालन करे। और निर्धन, और गर्भवती और उनके बच्चोंके पालन पोषणका उचित प्रबंध करे।”

दैवी विपत्तियोंके उपायवाले प्रकरणमें अग, पानी, दुर्भिक्ष, चूहा, शेर, सांप तथा राक्षस इन आधिदैवी जोखिमोंसे जनपदको बचानेके उपाय बताये हैं। पानी, व्याधि, दुर्भिक्ष और चूहोंसे रक्षाके संबंधमें जो-जो उपाय बताये हैं उन्हें हम यहां उद्धृत करते हैं—

पानी—नदीके किनारेके गांववाले वर्षाकी रातोंमें किनारेसे दूर रहकर सोवें। लकड़ी और बांसकी नावें सदा अपने पास रखें। तूंगा, मषक, नाभ, तमेड़ तथा बेड़ेके द्वारा डूबते हुए लोगोंको बचावें। जो लोग डूबते हुए मनुष्यको बचानेके लिए न दौड़ें उनपर १२ पण जुर्माना किया जाय बशर्ते कि उनके पास जब नाव आदि तैरनेवाला साधन न हो। पर्वोंमें नदीकी पूजाकी जाय। माया वेद तथा योग-विद्याको जाननेवाले वृष्टिके विरुद्ध उपाय करें। वृष्टिके रुकनेपर इन्द्र, गंगा पर्वत तथा महाकच्छकी पूजाकी जाय।

व्याधि—चौदहवें अधिकरण (औपनिषदिक) में विधान किये गये तरीकोंके द्वारा बीमारीके भयको कम किया जाय। यही बात वैद्य लोग दवाइयोंसे और सिद्ध तथा तपस्वी लोग शांतिमय साधन तथा प्रायश्चित्तोंके द्वारा करें। फैलानीवाली बीमारी (मरक) के संबंधमें भी यही तरीके काममें लाये जायें। तीर्थोंमें नहाना, महाकच्छका बढाना, गौओंका स्मशान में दुहना, मुर्देका धड़ जलाना तथा देवताओंके उपलक्षमें रात भर जागना आदि काम किये जायें। पशुओंकी बीमारी फैलनेपर परिवारके देवताओंकी पूजा तथा पशुओंके ऊपरसे धूप बत्ती उतारी जाय।

१. अर्थशास्त्र (प्रा० वि०) पृ० ३६ से ४१ तक।

दुर्भिक्ष—दुर्भिक्षके समय में राजा अनाज तथा बीज कम कीमतपर बांटे। लोगोंको इधर-उधर देशमें भेज दे। नये-नये कठिन कामोंको शुरू करे और लोगोंको भोजनाच्छादन दे। मित्र-राष्ट्रोंका सहारा लेकर अमीरों पर टैक्स बढ़ावे तथा उनका इकट्ठा किया हुआ धन निकाल ले। जिस देशमें क्रसल अच्छी हो उसमें अपनी प्रजाको लेकर चला जावे। नदीके किनारे धान, शाक, मूल तथा फलोंकी खेती करावे। मृग, पशु, पक्षी, शिकारी जंतु तथा मच्छियोंका शिकार शुरू करे।

चूहा—चूहोंके उत्पात होनेपर बिछी तथा नेवलोंको छोड़े। जो लोग पकड़ कर चूहोंकी मारें उनपर, १२ पण जुर्माना किया जाय। जो लोग जंगली जानवरोंके न होते हुए भी बिना कारण ही कुत्तोंको छोड़ रखें उनपर भी पूर्ववत् दंडका विधान किया जाय। थूहड़के दूधमें धानको सानकर खेतमें छोड़े। ऐन्द्रजालिक तरीकोंको काममें लावे तथा चूहोंके संबंधमें राज्यकर लगावे। सिद्ध तथा तपस्वी लोग शांतिमय उपायोंको करें। पर्वोंमें मूषक पूजा की जाय। टिड्डीदल, पक्षी, कीड़े आदिके उत्पातोंका उपाय भी इसी प्रकार किया जाय।”

परन्तु उसी समयके लेखक मेगस्थनीजका कहना है कि भारत-वर्षमें अकाल पड़नेकी बात कही सुनी भी नहीं जाती। इससे प्रकट है कि चंद्रगुप्तके राजका बंदोबस्त ऐसा अच्छा था कि उस समय भारतवर्षमें लोग अकालकी पीड़ा नहीं जानते थे। इस संबंधमें चाणक्य का प्रबंध बड़ाईके योग्य था।

: ५ :

प्राचीनकालका अन्त

१. चाणक्यके बादके पांचसौ वर्ष

अब तक गांवके बारेमें जो कुछ लिखा गया है वह अधिकतर उत्तर भारतके संबंधमें है। चाणक्यके कालके अंतमें दक्षिण

भारतके आंध्रों और कुशानोंका समय आता है जो विक्रमसे डेढ़-सौ वर्ष पहले आरंभ होता है और साढ़े तीनसौ वर्ष पीछे खतम होता है। कुशानोंका राज उत्तरमें था और आंध्रोंका दक्षिणमें जो सिलसिला मौर्यकाल तक खेती और व्यापारकी उन्नतिका चला आया था उसके टूट जानेका अभीतक कोई कारण नहीं हुआ था। भारतकी बहुत भारी आबादी पहलेकी तरह गांवोंमें रहती थी। गांव घोषों और पल्लियोंमें विभक्त थे। गांवका मुखिया आंध्रोंके राज्यमें सरकारी तौरसे रखा जाता था वह ऋगड़ोंका निबटारा भी करता था और राजाके लिए कर भी उगाहता था। अधिकारी लोग जो मालगुजारी मुकर्रर कर देते थे वह रकम जबतक राजाको मिलती जाती थी तबतक गांवकी बातोंमें राजा दखल नहीं देता था। धर्मशास्त्र भी यही कहता है कि गांव सभी तरहसे स्वतंत्र हैं।^१ और महाभारतमें कुलकी रीति^२ भी प्रमाण मानी गई है। उस समय भी एक ही परिवारमें बंधे रहनेकी रीति सबसे अच्छी समझी जाती थी। और अलग होकर रहना निर्बलताका चिन्ह था। इस कालमें राजा अपनेको पृथ्वीका ऐसा स्वामी समझता था कि जब उसे जरूरत होती थी प्रजाकी राय लिये बिना ही भूमि ले लेता था या किसीको दे देता था। तो भी किसानके जीवनकी दो बातें उलट-पुलट करनेकी मनाही थी, एक उसका घर और दूसरा उसका खेत।

किसान या वैश्य काम खेतीके सिवाय पशुपालन भी करता था। दान देना, पढ़ना, लिखना, व्यापार करना और लेन देन करना भी उसका कर्तव्य था। उसे बीज बोना भी आना चाहिये और अच्छे और बुरे खेतोंकी परख भी होनी चाहिए।^३

१. पारस्कर गृह्यसूत्र १-८१३

२. महाभारत, आदि पर्व ११३-६

३. पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।

उस समय जरूरत पड़ने पर किसान या वैश्यको सरकारसे बोने-को बीज भी मिलते थे और बदलेमें उपजका चौथाई हिस्सा सरकार लेती थी। सिंचाईके लिए जलका प्रबन्ध भी सरकारी था और जरूरत पर तकावी बंटती थी।^१

बुनाईका काम इस कालमें अपनी पराकाष्ठाको पहुंच चुका था। सूत, अन्न और रेशमके उत्तमसे उत्तम कपड़े बनते थे। ऊन के कपड़ोंमें एक तरहका कपड़ा चूहोंकी ऊनसे बनाया जाता था जो विशेष रूपसे गर्म रहता था। चीनी रेशमके सिवाय तीस प्रकारके देखी रेशम बरते जाते थे। द्राविड़ कवियोंने कुछ कपड़ोंकी उपमा “दूधकी बाष्प और सांपके केचुल” तकसे दी है और बारीकीका वर्णन करते हुए यह स्पष्ट लिखा है कि इनकी बुनावट इतनी बारीक है कि आंखोंको सूतके धागे अलग-अलग दिखाई नहीं पड़ते।

इस कालमें भी पेशों और कलाओंके संघ या पंचायतें बनी हुई थीं। प्राचीन लिपियोंसे जुलाहों, कुम्हारों, तेलियों, ठठेरों, उदयांत्रिकों, चित्रकारों और मूर्तिकारोंकी पंचायतें अलग-अलग बनी हुई थीं। जो विद्वान महाभारतकी रचनाका काल इसी कालके भीतर समझते हैं वे इस अवसर पर महाभारतका भी प्रमाण देकर कहते हैं कि इस समय पंचायतोंका बड़ा भारी महत्त्व था। महाभारतमें लिखा है कि इन पंचायतोंसे राजकी शक्तिको प्रधान रूपसे सहारा मिलता था।^२ सरपंचोंमें फूट

वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च ॥ मनुः १।६०

ब्रीजानामुप्तिविच्च स्यात्क्षेत्र दोषगुणस्य च ।

मानयोगं च जानीयात्तुलायोगांश्च सर्वशः ॥ मनुः ६।३३०

१. महाभारत, शांति पर्व, अ० ८८ श्लो० २६-३०, अ० ८१ श्लो० २३-२४; सभा पर्व अ० ५ श्लो० ६६-७६ ।

२. आश्रमवासिक पर्व, ७।७-६

डालना या बगावतके लिए उभारना, बैरीकी हानि करनेकी मानी हुई रीति थी । ^१ जब गंधर्वोंसे दुर्योधन हार जाता है तब अपनी राजवानोको लौटना नहीं चाहता । कहता है कि मैं पंचायतके मुखियोंको कैसे मुंह दिखाऊंगा^२ । उस समय पंचायतकी रीतियां और नीतियां धर्मशास्त्रकी तरह मानी जाती थीं ।^३ अपनी पंचायतके सामने बचन देकर जो 'तोड़ता था उसे राजा देश निकालेका दंड देता था । और पंचायतके विरुद्ध पाप करनेवाले के लिए कोई प्रायश्चित्त न था । ऐसे कड़े नियमोंके होते कला और कारीगरोंमें ऊंचीसे ऊंची दशाको पहुंचना जरूरी था । इन्हीं पेशेवालोंकी धीरे-धीरे जातियां बन गईं और उस समयकी पंचायतें आज भी जातियोंकी पंचायतें बनी हुई हैं । मनुस्मृतिमें लिखा है कि राजाको चाहिए कि वैश्यों और शूद्रोंसे उनके कर्तव्योंका पालन करावे । अगर ये दोनों जातियां अपने-अपने कर्तव्योंका पालन करेगी तो संसारकी व्यवस्था ही नष्ट हो जायगी ।^४ उस समय वर्ण धर्मकी रक्षा बड़े महत्वकी बात समझी जाती थी । नासिककी गुफाके शिलालेखमें राजा गौतमी-पुत्र बालश्री बड़े गर्वके साथ कहता है कि हमने चारों वर्णके एक-दूसरेमें मिलकर गड़बड़ करनेमें रुकावट डाली है । इस प्रथाको बन्द कर दिया है ।

१. शांति पर्व ५६ । ४६, १६१ । ६४

२. ब्राह्मणाः श्रेणिमुख्याश्च तथोदासीन वृत्तयः ।

किं मां वक्ष्यन्ति किम् चापि प्रतिवक्ष्यामि तानहम् ।

वनपर्व २४६ । १६

३. जातिजानपदान्धर्माञ्श्रेणी धर्माश्च धर्मवित् ।

समीक्ष्य कुलधर्माश्च स्वधर्मं प्रतिपादयेत् ॥ मनुः ८ । ४१

४. वैश्यशूद्रौ प्रयत्नेन स्वानि कर्माणि कारयेत् ।

तौ हि च्युतौ स्वकर्मभ्यः क्षोभयेतामिदं जगत् । मनुः ८ । ४१८

इस कालमें दासोंके पास कोई सम्पत्ति न होती थी। वह मजूरीके रूपमें ही कर देता था। शूद्रोंका यही कर्तव्य था कि वे विशेषरूपसे किसानोंकी सेवा करें।^१ बाकी दशा दासोंकी वही थी जो पिछले अध्यायमें लिख आये हैं। एक बात इस कालकी बड़े मार्केकी है कि किसान लोग शूद्रोंसे अर्थात् मजूरोंसे लगभग मिलते जा रहे थे। मजूर बढ़ते-बढ़ते चरवाहेसे गोपालक बन जाता था। बनियेकी नौकरी करते-करते आप बनिये करने लग जाता था। बहुत दिनोंका किसानका मजूर इनाममें या मजूरीमें माफ़ी खेत पाजाता था। इस तरह मजूरीकी जातिका आदमी बनिया, ग्वाला या खेतिहर हो जाता था। महाभारतमें लिखा है कि छः गायोंको चरानेवाला एक गायका सारा दूध पानेका अधिकारी है और सौ गायें चराता हो तो नित्यके दूधके सिवाय बरसके अन्तमें एक जोड़ी गाय बैलकी मिलती थी। किसानके मजूरको मजूरीमें उपजका सातवां भाग मिलता था। इस तरह मजूर जातिके लोग भी किसान बनते गये। ब्राह्मण और क्षत्रिय वैश्य तक उतर सकते थे। परन्तु शूद्र नहीं हो सकते थे। इस तरह तीनों वर्णोंके लोग धीरे-धीरे किसान होते गये और किसानोंकी गिनती बढ़ती गई।^२

मनुस्मृतिमें राजाको अनाजके ऊपर छठा भाग, पेड़, मांस, मधु, घी, कन्दमूल औषधि, मसाले, फल और फूल पर भी छठा भाग, पशु पर पाँचवां भाग कर राजाको मिलता था।^३ महा-

१. महाभारत १२।६०।३७; १।१००।१

२. महाभारत १२।६०।२४; २।५।५४; २।६१।२०

३. पञ्चाशद्भाग आदेयो राज्ञा पशुहिरण्ययोः।

धान्यानामष्टमो भागः षष्ठो द्वादश एव वा ॥ मनु० ७।१३०

आददीताथ षड्भागं द्रुमांसमधुसर्पिषाम्।

गन्धौषधिरसानां च पुष्पमूलफलस्य च ॥ मनु० ७।१३१

भारतमें साफ लिखा है कि कर जरूर लगाये जाने चाहिए । इसका कारण यह है कि प्रजाकी रक्षा की जाती है और रक्षामें खर्च लगता है । परंतु कर बहुत हलका लगना चाहिये । सभी किसानोंसे और गांवके सभी लोगोंसे कर रुपये पैसेके रूपमें नहीं लिया जाता था । किसान अनाजके रूपमें देता था, व्यापारी अपने व्यापारकी वस्तुके रूपमें देता था और मजूर और कारीगर अपने कामके रूपमें देते थे । केवल शहरके लोग रुपये पैसेके रूपमें देते थे । जो चीजें जीवनके लिए अत्यन्त जरूरी थीं उनपर कर नहीं लगता था ।

धन पैदा करनेके सात साधन बताये गये हैं । उनमें साहूकारी भी है, परिश्रम भी है और बनिज भी है । साहूकारी और बनिज तो धनके साधन हैं ही, परन्तु परिश्रम जो अलग साधन दिखाया गया है उसमें खेती-बारी और कारीगरी मुख्य है । ' सीधीसादी मजूरीसे तो आज कोई धनी नहीं हो सकता । परन्तु मनुस्मृतिमें केवल परिश्रमका उल्लेख करनेसे हम यह कह सकते हैं कि शायद उस समय मजूरी बहुत अच्छी मिलती थी और चीजें सस्ती थीं इसलिए मजूर भी धनवान् हो सकता था ।

सूद, कर, व्यापार और मजूरी इन सबके संबंधमें विस्तारसे जो नियम दिये गये हैं उनसे यह पता चलता है कि भारतमें इस

पत्रशाकतृणानां च चर्मणां वैदलस्य च ।

मृगमयानां च भाण्डानां सर्वस्याश्ममयस्य च ॥ मनु० ७ । १३२

आददीताथ षड्भागं प्रणष्टाधिगनान्नुप ।

दशमं द्वादशं वापि सतां धर्ममनुस्मरन् ॥ मनु० ८ । ३३

धान्येऽष्टमं विशां शुक्लं विंशं कार्षापणावरम् ।

कर्मोपकरणाः शूद्राः कारवः शिल्पिनस्तथा ॥ मनुः १० । १२०

१. सप्त वित्तागमा धर्म्या दायो लाभः क्रयो जयः ।

प्रयोगः कर्मयोगश्च सत्प्रतिग्रह एव च ॥ मनुः १० । ११५

कालमें आर्थिक संगठन जितना उत्तम था उससे अधिक अच्छा हो नहीं सकता। पेशेवर और कारीगर बड़े चतुर और दक्ष देख पड़ते हैं। उस समयका जीवन बड़ा सभ्य और ऊंचा देख पड़ता है। भांति-भांतिके अनाज, मसाले, फल-फूल तरकारियां जो काम आती थीं, ऊंचे दर्जेकी खेतीकी गवाही देती हैं। भारतका उस समयका जगद्व्यापी व्यापार वाणिज्यकी उत्तम अवस्था बताता है। उस समयकी अद्भुत और अपूर्व कारीगरी और कला बहुत ऊंची उन्नतिकी साक्षी है। सभी घरोंमें सोना, चांदी, रत्न, गहने और रेशमी कपड़ोंके होनेकी चर्चा है।'

२. गुप्तकाल

इसके बाद गुप्तोंका समय आता है। गुप्तोंके समयमें भारत-वर्षके बाहर भी भारतीय लोग जाकर बसे। बंगालसे पूरब बर्मामें जाकर भारतीयोंने बस्तियां बसाईं और खेतीबारी करने लगे। इससे पहलेके कालमें भी पता चलता है कि भारतके दक्षिणके हिन्दमहासागरमें पच्छिमसे पूरब तक फैले हुए अनेक टापुओंमें बड़े-बड़े जहाजों पर भारतके व्यापारी आया-जाया करते थे और बहुतसे लोग जाकर वहीं बस भी गये थे और अपनी संस्कृतिका प्रचार भी वहां कर रक्खा था। परन्तु जहां-जहां भारतीय गये और बसे, वहां उनका मुख्य कारबार खेतीका ही था। और अपनी मातृभूमिमें तो सतजुगसे गांवमें रहना और खेती-बारी करना उनकी विशेषता थी। युग और राजके बदलनेसे कभी तो राजा का अधिकार कम हो जाता था और कभी बढ़ जाता था। गांवमें उपजके बढ़ जानेसे उसे दूर-दूर पहुंचानेके लिए व्यापारका

१. तैजसानां मणीनां च सर्वस्याश्ममयस्य च ।

अस्मनाद्भिर्मृदा चैव शुद्धिरुक्ता मनीषिभिः ॥ मनुः ५।१११

निर्लेप काञ्चनं भाण्डमद्भिरेव विशुध्यति ।

अञ्जमश्ममयं चैव राजतं चानुपस्कृतम् ॥ मनुः ५।११२

सिलसिला बढ़ाया गया था और धीरे-धीरे व्यापारियोंके केन्द्र बनते गये। यही केन्द्र नगर थे और इन नगरोंमें प्रजाकी और प्रजाकी सम्पत्तिकी रक्षा करनेके लिए राजधानियां बन गई थी। ये शहर धीरे-धीरे बहुत बढ़ गये और बलवान राजाओंने छोटे-छोटे राजाओंको अपने बसमें करके अपने अधिकार दूर-दूर तक फैला लिये। इस तरहके राजाओंमें मौर्यकालके राजा बड़े-चढ़े थे। गुप्तकालके राजा उनसे भी ज्यादा बड़े-चढ़े निकले। पर उन्होंने एक बड़ा महत्त्वका काम भी किया। बाहरी विदेशी जातियोंने भारत पर हमले किये थे और भारत पर अधिकार कर लिया था। अनेक लड़ाइयां हुई। गुप्तोंने उन्हें परास्त किया और भारत को भारतीयोंके हाथमें रक्खा। गुप्तोंके समयमें व्यापार बहुत बढ़ गया और शहरोंको बड़ा लाभ हुआ तो भी भारतकी बहुत भारी आबादी गांवोंमें ही रहती थी और खेती-बारी ही उनका खास धन्धा था। वे लोग कुआँसे, नहरोंसे, तालाबोंसे और गढ़ोंसे पानी लेकर सिंचाई करते थे। उस समय जल संचयके लिए 'निपान' अर्थात् भारी-भारी जलाशय हुआ करते थे। यह नियम था कि प्रजा जब कोई नया धन्धा उठावे या नई जमीन जोते बोवे, या नहर, तालाब, कुएं खोदे और यह सबकुछ अपने कामके लिए करे तो जबतक खर्चका दूना लाभ न होने लगे तबतक राजा उनसे कुछ न मांगे। राजा इस तरह किसानसे कर वसूल करे कि किसान नष्ट न होने पावें। जैसे माली फूल चुन लेता है परन्तु पेड़की पूरी रक्षा करता है उसी तरह राजा भी बरते। राजा उस कोयलेवाले की तरह न बरते जो कोयला लेनेके लिए पेड़को जला डालता है।'

जंगलसे उदुम्बर, अश्वत्थ, इमली, चंदन, बट, कदम्ब, अशोक बकुल, आम, पुन्नाग, चम्पक, सरल, अनार, नीम, ताल, तमाल

१ शुक्रनीतिसार ४।४।६१-११२, १२४-१२७, ४।५।१४१ और २४२-४४, २२२-२३

लिकुच, नारियल, केला आदिके फल मिलते थे। खदिर, सागवान, साल, अर्जुन, शमी आदि बड़े-बड़े पेड़ोंकी भी चर्चा है। रमनों और जंगलोंके अध्यक्ष भी हुआ करते थे जिन्हें फूल-फलके जमने और विकसनेका पूरा हाल मालूम होता था। वे पेड़ोंका लगाना और पौधोंका पालन-पोषण करना खूब जानते थे और औषधियों का अच्छा ज्ञान रखते थे।^१

कलाओंका भी अच्छा विकास हुआ था। शुक्राचार्य ने तो चौंसठ कलाओंका वर्णन किया है परंतु इसका यह मतलब नहीं है कि शुक्रनीतिकारके समयमें ही ये चौंसठ कलायें चली थीं। उन्होंने केवल सूची तैयार की थी जिससे यह पता लगता है कि बहुतसे ऐसे काम भी उस समय होते थे जिन्हें लोग आजक बिल्कुल नई बात समझते हैं। अर्क खींचना, औषधियां तैयार करना, धातुओं का विश्लेषण, धातुओं का मिश्रण, नमकका धंधा, पानी को पम्प करना, चमड़ेको सिक्काना इत्यादि काम आजसे कम-से-कम डेढ़ हजार बरससे पहले हुआ करते थे। हम इस जगह कताई बुनाईकी तो चर्चा ही नहीं करते, जो न केवल देशव्यापक काम था बल्कि जिसमें सारे संसारमें भारतवर्षकी विशेषता थी। शुक्राचार्यने उन और रेशमके कपड़ोंका केवल जिक्र ही नहीं किया है बल्कि इनके धोने और साफ करनेकी विधियां भी बताई हैं और याज्ञवल्क्य ने तो रुईसे बने हुए कागजकी भी चर्चा की है।^२

जो गांव समुद्रके किनारे थे उन गांवोंमें अधिकांश मरजीवे रहते थे और समुद्रसे मोती, मूंगे, सीप आदि निकालनेका काम बहुत जोरोंसे होता था। सीपोंके सिवाय मछलियों, सीपों, शंखों और बांसोंसे भी मोती मिलते थे। सबसे अधिक सीपों से मिलते

१. शुक्रनीतिसार ४ । ५. । ६५-१०२, ११५-१२२;
२। ३२०-३२४

२. शुक्रनीतिसार ४ । ३. १ । १८०.

थे ।^१ लंकाके रहनेवाले नकली मोती भी बनाया करते थे । उन दिनों साधारण लोग इतने सुखी थे कि सोना, चांदी और रत्नोंके गहने पहननेका आम रिवाज था । इससे यह भी पता चलता है कि उस समय गांव-गांवमें बड़े होशियार सुनार होंगे ।^२

बांसफोर बांसकी चीजोंके बनानेमें ऐसे कुशल थे कि उत्सव के अवसरोंपर शुद्ध बांसके बने चार पहियोंके रथ तैयार करते थे जिनमें तीन-तीन गुम्बद होते थे और चौदह-पंद्रह हाथ तक ऊंचे होते थे । इन रथोंको वे बड़ी सुंदरतासे बनाते, रंगते और सजाते थे । इनपर बड़ी अच्छी चित्रकारी भी करते थे ।^३

उस समय भी पंचायतें बनी हुई थी । किसानोंकी, कारीगरोंकी, कलावंतोंकी, साहूकारोंकी नटोंकी और संन्यासियों तककी पंचायतें संगठित थीं ।^४ इन पंचायतोंके नियम बंधे हुए थे और और वह सरकारी कानूनके अंतर्गत समझे जाते थे; और उनके नियम उस समयकी सरकार भी मानती थी । जो लोग पंचायत के सदस्योंमें फूट डालनेके अपराधी होते थे उन्हें सरकारकी ओर से बड़ा कड़ा दंड मिलता था । “क्योंकि यदि ऐसीको दंड न दिया गया तो यह फूटकी बीमारी महामारीकी तरह महाभयानक रीति से फैल जायगी ।”^५ याज्ञवल्क्य संहितामें लिखा है कि जो कोई पंचायतकी चोरी करे या वचन तोड़े तो उसे देशनिकाला दिया जाय और उसकी सारी जायदाद जब्त करली जाय ।^६ पंचायतों

१. शुकनीतिसार ४।२।११७-११८

२. मृच्छकटिक नाटक और गरुड़ पुराणमें अनेक अंशोंसे इन बातों का प्रमाण मिलता है ।

३. वील, फाहियान--(अंग्रेजी) पृ० ५६, ५७

४. शुकनीतिसार ४।५।३५-३६

५. नारदस्मृति १०।६

६. याज्ञवल्क्य संहिता २।१८७-१८२

के पास पंचायती जायदाद हुआ करती थी, और पंचायतके संगठनके नियम विस्तारसे बने हुए थे। परंतु नियमोंके बनानेमें यह बात बराबर ध्यानमें रखी जाती थी कि उस समयके कानूनसे और धर्मशास्त्रके नियमोंसे किसी तरह विरोध न पड़े। पंचायतोंकी नियमावलीका नाम 'समय' था और पंचायतके काम करनेवाले 'कार्य चिन्तक' कहलाते थे पंचायतमें जो लोग ईमानदारी और पवित्र आचरणके समझे जाते थे। वही कार्यचिन्तक बनाये जाते थे। और वही पंचायतके नामसे सरकारी दरबारों में भी काम करते थे। सरकारमें उनकी बड़ी इज्जत की जाती थी। पंचायत के सदस्यों पर भी उनका अधिकार था। उनके फैसले जो न माने उन्हें वे दंड दे सकते थे। परंतु वे भी पंचायतके नियमोंसे इतने बंधे होते थे कि जब वे आप चूक जाते थे या उनमें और सदस्योंमें जब झगड़ा पड़ जाता था तब राजा ठीक निर्णय करता था।' परंतु पंचायतको पूरा अधिकार था कि यदि कार्यचिन्तकोंसे कोई भारी अपराध हो जाय या वे फूट डालनेवाले ठहर जाय या वे पंचायतका धन नष्ट करें तो उन्हें निकाल बाहर करे और राजाको केवल इस बातकी सूचना दे दे। और अगर कोई कार्यचिन्तक इतना प्रभाववाला निकले कि पंचायत उसे निकाल न

१. नारद स्मृति १०।१, म. म. मित्रमिश्र विरचित वीरमित्रोदय (जीवानन्द विद्यासागर सम्पादित) पृ० ४२८.

याज्ञवल्क्यने तो मुखियाको भी दंड दिलाया है—

साहसी भेदकारी च गणद्रव्यविनाशकः।

उच्छेद्यः सर्व एवैते विख्यायैव नृपे भृगुः ॥

गण द्रव्यं हरेद्यस्तु संविदं लंघयेच्च यः।

सर्वस्वहरणं कृत्वा तं राष्ट्राद्विप्रवासयेत् ॥

याज्ञवल्क्य स्मृतिः ॥ २।१८७

सके तो मामला राजा तक आता था और राजा दोनों पक्षोंकी बातें सुनकर निश्चय करता और उचित दण्ड देता था।

पंचायतके होने और उसकी रीति पर काम होनेका एक पुराना उदाहरण इंदौरमें मिल हुए स्कंदगुप्तके एक ताम्रपत्रसे मिलता है।^१ इस लिपिमें एक जायदादके दान किये जानेकी बात है कि उसके ब्याजसे सूर्य देवताकी पूजाके लिए मंदिरमें नित्य एक प्रदीप जला करे। सूर्य देवताके मंदिरमें इस कामके लिए एक ब्राह्मण जो जायदाद दानमें लिख देता है, उस जायदादपर तेलियोंकी उस पञ्चायतका ऋज्जा सदाके लिए कर दिया जिसका सरपंच इन्द्रपुरका रहनेवाला जीवंत है, और इस जायदादपर पञ्चायतका ऋज्जा उस समयतक रहेगा जबतक कि, इस बस्ती-से चले जानेपर भी, उसमें पूरा एका बना रहे।

और समयोंकी तरह इस समय भी यही बात प्रचलित थी कि बेटा प्रायः अपने बापका पेशा करता था। इसीसे पेशेवरोंकी भी जाति बन गई थी। जो अपने बाप-दादोंका पेशा छोड़ देता था उसे राजा दंड भी दे सकता था। परंतु यह अकारण छोड़ देने वालेकी बात थी। बाप-दादोंके पेशेको छोड़ देनेके लिए प्रबल कारण होने पर पेशा छोड़नेमें हर्ज भी नहीं समझा जाता था। मंदसौरके शिलालेखमें, जो कुमारगुप्त और बंधुवर्म्मनका लिखा है,^२ यह उल्लेख है कि रेशम बुननेवालोंकी एक पंचायत पहले लाट पर ठहरी थी, फिर दशपुरमें वहांके राजाके गुणों पर मुग्ध होकर चली गई। वहां जाकर कुछ लोगोंने धनुर्विद्या सीखी, कुछ धार्मिक जीवन बिताने लगे, कुछ ज्योतिषी होगए, कुछ कवि कवि होगए, कुछ संन्यासी होगए और बाक़ी बाप-दादोंकी तरह

१. प्लीट (अंग्रेज़ीमें) गुप्त लिपियां नं० १६ (संवत् ५२१ विक्रमीय

२. प्लीट (अंग्रेज़ीमें) गुप्त लिपियां नं० १८

रेशम बुनते रहे। इस पंचायतने संवत् ४६२ (विक्रमी संवत्) में दशपुरमें सूर्यका एक बहुत सुंदर बड़ा मंदिर बनाया। और छत्तीस बरस बाद जब वह मरम्मतके योग्य हुआ तब उसी पंचायतने संवत् ५२८ वि०में उसकी पूरी मरम्मत कराई। इस उदाहरणसे दो बात सिद्ध होती हैं। एक तो यह कि पंचायतमें बंधकर भी लोगों को इतनी आज्ञादी थी कि वे अपने मनमाने काम कर सकते थे, अपनी योग्यता बढ़ा सकते थे और अपना पारिवारिक पेशा छोड़ सकते थे। दूसरी बात यह मालूम होती है कि जातियों या पेशीकी पंचायतोंका संगठन बराबर पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहता था और काम करता रहता था। मजूरोंका भी ऐसा ही संगठन था और दासों और मजूरोंकी दशा भी वैसी ही थी जैसे पहले वर्णनकी गई है। किसानोंकी सुख समृद्धि गुप्त कालमें भी घटी नहीं थी।

: ६ :

पूर्व माध्यमिक काल

१. हर्षकाल और पीछे

गुप्तकालके बाद ही हर्षका समय आता है। गुप्त सम्राटोंका बड़ा भारी साम्राज्य मध्य एशियाके जंगली लुटेरोंकी चढ़ाईसे तहस-नहस हो गया। जिस तरह गुप्त साम्राज्य बरबाद हुआ उसी तरह भारतवर्षके भारी व्यापारको भी धक्का पहुंचा। परंतु गांव और गांवके खेती आदि व्यापार इन धक्कोंसे भी नष्ट नहीं होते थे। यही सारी मुसीबतोंमें बेड़ा पार लगाते थे। हर्षके समयमें भी खेती बारीके संबंधके सारे काम बराबर ज्योंके त्यों होते रहे। इस समय पच्छांशके देशोंमें क्या किसानोंके काममें, और क्या व्यापारमें, और क्या सामुद्रिक यात्राओंमें जाटोंका

बोलबाला रहा । भारतवर्षमें, जैसे सदासे होता आया, जन मुदाय गांवोंमें ही रहता था और सबसे बड़ा कारबार खेतीका था । गांव-गांव खंडसालें चलती थीं, चरखे और करघे चलते थे, गांव-में सभी जाति और पेशेके मनुष्य रहते थे, सब तरहकी कारीगरी और कला पहलेकी तरह बराबर समुन्नत अवस्था में थी । कश्मीर अपने चावलों और केशरके लिए प्रसिद्ध हो गया था ! मगध भी अपने चावलोंके लिए मशहूर था । ह्युएनत्सांगने लिखा है कि बहुत भारी अमीर लोग मगधके ही चावल खाते थे ।^१ लिखा है कि मथुरासे १०० मील पच्छिम पार्यात्र नामके स्थानमें इस तरहका चावल होता था जो साठ दिनोंमें ही पकता था (इसे साठीका चावल कहते हैं और बरसातमें अब भी साठ दिनमें ही पकता है) ह्युएनत्सांगने लिखा है कि लोगोंका साधारण भोजन घी, दूध, मक्खन, मलाई, खांड, मिश्री, रोटियां, तेल आदि था । और जो मांस खाते थे वे हरिणका मांस और ताज़ी मछलियां खाते थे । फलोंमें, उसने लिखा है कि, इतने हैं कि नाम नहीं गिने जा सकते । आम्र, कपित्थ, आमलकी, मधूक, भद्रआमला, टिंडक, उदुम्बर, मोचा, पंस्य, नारियल, खजूर, लुकाट, नासपाती, बेर अनन्नास, अंगूर इत्यादि-इत्यादि अनेक नाम गिनाये हैं । लिखा है कि कश्मीर फल-फूलके लिए मशहूर था ।^२ शिक्षाके विषयमें लिखा है कि सात और सात बरससे अधिकके लड़कोंको पांच विद्यायें सिखाई जाती थीं जिनमेंसे दूसरी विद्या शिल्पस्थान विद्या थी, जिसमें कलाओं और यंत्रोंका वर्णन है । कपड़ोंके बारेमें ह्युएनत्सांगने भारतके कारीगरोंकी बड़ी प्रशंसा की है । सूती रेशमी, छालटी, कंबल और कराल इन पांच प्रकारके वस्त्रोंका वर्णन किया है । इनमेंसे कंबलसे अभिप्राय था बहुत

१. बील—ह्युएनत्सांग, (अंग्रेज़ी) जिल्द २, पृ० ८२

२. बील—ह्युएनत्सांग, (अंग्रेज़ी) जिल्द २ पृ० २३२

बारीक ऊनी कपड़ेसे जो बकरीके बहुत बारीक रोयेंसे बनते थे। कराल एक जंगली जानवरके बारीक रोयेंके बने कपड़े होते थे। ऐसे कपड़े अमीरोंकी फरमाइश पर ही बनते थे। बरोच या महा-कच्छकी रूई सदाकी तरह हर्षके समयमें भी मशहूर थी, उसके बारीक कपड़े भी मशहूर थे। बुनाईकी कला किस ऊंचे दर्जेको पहुंच चुकी थी इस बातका थोड़ा सा अन्दाजा बाण द्वारा वर्णित राज्यश्रीके विवाह प्रकरणसे हो सकता है। लिखा है कि “महल क्षौम, बादर, दुकूल, लाला तंतुज, अंशुक और नैत्रसे सुशोभित था जो सांपके केंचुलकी तरह चमकते थे और अकठोर केलेके पेड़के भीतरके छिलकेकी तरह कोमल थे और इतने हलके थे कि सांससे उड़ जा सकते थे। छूनेसे ही उनका पता लगता था। चारों ओर हज़ारों इंद्रधनुषकी तरह चमक रहे थे।” क्षौम छालके कपड़ोंको कहते हैं, बादर रूईके कपड़ोंको कहते हैं, लाला तंतुज उस कौशेय वस्त्रको कहते हैं जिसके तंतु कीड़ेकी लाला या रालसे बनते हैं। नैत्र किसी वृक्ष विशेषकी जड़के रेशोंसे बने वस्त्रको कहते हैं और दुकूल गरम, महीन, रेशमी कपड़े होते थे और अंशुक वह रेशमी कपड़े थे जिनके धागे किरणोंकी तरह बारीक और चमकीले होते थे। कपड़ा अनेक प्रकारके रेशों और तंतुओंसे बनता था। आज जिनका हमें पता भी नहीं है और वह भी इतना बारीक बनता था कि छूनेसे ही पता लगता था कि कपड़ा है। उसके बारीकीको मिलके कपड़े क्या पहुंचेंगे। बुननेकी कला इस हदको पहुंच चुकी थी तो साथ ही कातनेकी कला भी उसी हद तक पहुंच चुकी थी कि सूतके तार मुश्किलसे देख पड़ते थे।

१. हर्षचरित, चौथा उच्छवास, राज्यश्रीके विवाह प्रकरणसे।

“क्षौमैश्च बादरैश्च दुकूलैश्च लालातन्तुजैश्चांशुकैश्च नैत्रैश्च

निर्भोक्निभैरकठोररम्भागर्भकोमलैर्निःश्वासहर्षैः स्पर्शानुमेयैर्वासोभिः
सर्वतः स्फुरद्भिरिन्द्रायुधसहस्रैरिष संच्छादितं।

बृहस्पति संहितासे पता चलता है कि गांववाले मिलकर पञ्चायत बनाते थे, या जब कारीगर अपनी पञ्चायत स्थापित करते थे तो एक पञ्चायतनामा लिख लेते थे, जिसमें कोई खटकेकी बात न रहे और सब लोग अपने कर्तव्योंमें बंधे रहें। जब कभी चोरों लुटेरों या बेक्रायदा सेनाओंका डर होता तो उसे सार्वजनिक विपत्ति समझा जाता था और उस जोखिमका मुकाबला सब मिलकर करते थे।^१ जब कोई आम फायदेका काम किया जाता था, धर्मशाला, बावड़ी कुए, मंदिर, बारा बगीचे आदि सबके लाभके लिए बनवाने होते थे या कोई सार्वजनिक यज्ञ करना होता था तब पञ्चायत या गांवकी संभा ही इन कामोंको संपन्न करती थी।^२ पञ्चायतकी स्थापनाके आरंभमें पहले परस्पर विश्वास दृढ़के करके किसी पवित्र विधि या लिखा-पढ़ी, या मध्यस्थसे निश्चय कराकर पञ्चायतका काम आरंभ किया जाता था। पञ्चायतका काम करनेवाले उसके श्रेष्ठी और दो या तीन या पांच और सहायक होते थे।^३ जो लोग इस तरह कार्यचिंतक चुने जाते थे वे वेदके धर्मको और अपने कर्तव्यको जानते थे, अच्छे कुलके होते थे और सब तरहके कारोबार जानते थे। पञ्चायतोंके संबंधमें प्रायः वही नियम अब भी बरते जाते थे। जिनकी चर्चा हम पहले कर आये है। उनको यहां दुहराना व्यर्थ होगा। इस कालमें कारीगरों की ऐसी कंपनियां भी बनी हुई थीं जिनमें पूंजीके बदले सदस्योंके कारीगरीके काम लगे हुए थे। बेगारीकी चाल उस समय न थी। जरूरत पड़ने पर सरकार या पञ्चायत काम भी लेती थी और पूरी मजूरी देती थी।

१. बृहस्पति स्मृति १७। ५-६

२. बृहस्पति संहिता १७। ११-१२.

३. बृहस्पति संहिता १७। ७, १७। १७, १७। ६

ह्यु एनत्सांगने भारतवर्षको बहुत समृद्ध और सुखी पाया। यहां पर सब तरहके लोगोंमें धरतीका ठीक-ठीक रीतिसे बंटवारा था खेतीसे थोड़े खर्चमें बहुत-सा अनाज पैदा होता था और देशकी बची हुई पैदावार व्यापारी लोग देशके बाहर ले जाते थे और बदलेमें सोना, रत्न और उत्तम-उत्तम वस्तुएं लाते थे। संसारके सभी सभ्य भागोंसे व्यापार बड़े सुभीतेसे जारी था। सोने-चांदी-की अटूट धारा व्यापारके द्वारा भारतमें उमड़ी चली आती थी। इसी धनकी प्रसिद्धिसे मुसलमान कासिमने सिंधु देशपर चढ़ाई की और उसे अपने अधीन कर लिया। मुसलिम अधिकारका यही आरंभ था और विक्रमकी ग्यारहवीं शताब्दीमें इसी धनके लोभसे महमूद गजनवीके आक्रमण पर आक्रमण हुए और उसने लूट-लूटकर खजाने भरे। उसके बाद शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीने तो विदेशी लुटेरोंके लिए खैबरका मार्ग ही खोल दिया और भारतमें मुसलिम साम्राज्यकी नींव डाली। सैंकड़ों बरस बाद भारतकी इसी धनकी प्रसिद्धिने कोलंबसको अमेरिका भेजा और पातालका पता लगवाया, और वास्कोडीगामासे उत्तमाशा अंतरीप पार कराया और खैबरकी राहसे लाखों तातारियों, पठानों और मुगलोंसे भारतपर आक्रमण कराया।

२. मुसलिम चढ़ाईके आरंभतक

विक्रमकी लगभग दसवीं शताब्दीमें भारतवर्ष अनेक राज्योंमें बंटा था। उनका राज्य प्रजाके लिए बड़ा सुखदायक था। उनको कर बहुत हलका देना पड़ता था, लगान बहुत कम देना पड़ता था क्योंकि खेतीके लिए धरती बहुत थी और प्रजाको किसी तरहका कष्ट न था। राजा लोग आपसमें लड़ते थे, एक-दूसरे पर विजय कर लेते थे परंतु प्रजाको बैरी राजासे भी कोई कष्ट न मिलता था। किसान शांतिसे हल जोत रहा है, खेती कर रहा है और उसके पड़ोसमें घोर युद्ध हो रहा है। युद्ध करनेवाले

खेतीको कोई हानि न पहुँचाते थे । व्यापारी अपना माल लादकर देश-विदेशमें बेचनेको लेजाता था । युद्ध करनेवाले सैनिक उनको नहीं छूते थे । सिंधके सिवाय और कहीं भी अहिंदू राज न था । कन्नौज, मालखेड़ और मुंगेर ये तीन बड़े-बड़े साम्राज्य थे, पर ये अपने-अपने स्थानके साम्राज्य थे । ऐसा भी न था कि राजपूतों पर मराठों या मराठों पर बंगालियोंका राज हो । जहां कहीं भारतके और किसी प्रांतका दूसरे प्रांतपर अगर कोई आधिपत्य भी था तो वह इतना थोड़ा था कि विदेशी राज-सा प्रतीत न होता था । किसानोंकी रक्षा और शांत जीवनने उन्हें राजके मामलोंसे इतना निश्चित कर दिया था कि उनकी खेती-बारी अगर आज एक राजाके अधीन है और कल दूसरे राज्यमें चली जाती है तो इस हेर-फेरसे उनके कारबारमें कोई बाधा नहीं पड़ती थी । उनके भूमिकर और ग्राम-स्वराज्यमें कोई अंतर नहीं पड़ता था । इस कारण देशमें क्रांति भी होजाय और राज्य कितना ही बदल जाय वे इस बातसे बिलकुल बेपरवाह रहने लगे । उनकी बान पड़ गई कि कोई भी राज हों उसकी अधीनता स्वीकार कर लेते थे । अजबेरूनीने लिखा है कि राजा ज्यादा-से-ज्यादा छठा भाग कर लेता था । खेतोंसे, मजूरोंसे, कारीगरोंसे, व्यापारियोंसे सबसे उनकी आमदनीपर कर लिया जाता था । केवल ब्राह्मणोंसे कर नहीं लिया जाता था ।

विक्रमकी तेरहवीं शताब्दीके पूर्वार्धतक यहांके गांवोंका जैसा संस्थान था, पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझाने कुछ अधिक विस्तारसे दिया है । हम उसे ज्यों का त्यों उद्धृत करेंगे—

“शासनकी सुविधाके लिए देश भिन्न-भिन्न भागोंमें बंटा हुआ था । मुख्य-विभाग भुक्ति (प्रांत), विषय (जिला) और ग्राम थे । सबसे मुख्य संस्था ग्राम-संस्था थी । बहुत प्राचीन कालसे भारतवर्षमें ग्राम

संस्थाओं का प्रचार था। ग्राम के लिए वहां की पंचायत ही सब कुछ कार्य करती थी। केन्द्रीय सरकार का उसीसे संबंध रहता था। ये ग्रामसंस्थायें एक छोटा सा प्रजातंत्र थीं, इनमें प्रजा का अधिकार था। मुख्य सरकार के अधीन होते हुए भी ये एक प्रकारसे स्वतंत्र थीं।

प्राचीन तामिल इतिहास से उस समय की शासन-पद्धति का विस्तृत परिचय मिलता है, परंतु हम स्थानाभाव से संक्षिप्त वर्णन ही देंगे। शासन कार्य में राजा की सहायता देने के लिए पांच समितियां होती थीं। इनके अतिरिक्त जिलों में तीन सभायें होती थीं। ब्राह्मण-सभामें सब ब्राह्मण सम्मिलित होते थे। व्यापारियों की सभा व्यापारादिका प्रबंध करती थी। चोल राजराज (प्रथम) के शिलालेख से १५० गावों में ग्राम-सभाओं के होने का पता लगता है। इन सभाओं के अधिवेशन के लिए बड़े-बड़े भवन होते थे, जैसे तंजोर आदि में बने हुए हैं। साधारण गांवों में बड़े-बड़े वटवृक्षों के नीचे सभाओं के अधिवेशन होते थे। ग्राम-सभाओं के दो रूप—विचार सभा और शासन-सभा—रहते थे। संपूर्ण सभा के सभ्य कई समितियों में विभक्त कर दिये जाते थे। कृषि और उद्यान सिंचाई, व्यापार, मंदिर, दान आदिके लिए भिन्न-भिन्न समितियां थीं। एक समय एक तालाब में पानी अधिक आने के कारण ग्राम की हानि पहुंचने की संभावना होने पर ग्राम-सभाने तालाब-समितिको इसका सुधार करने के लिए बिना सूद रुपया दिया और कहा कि इसका सूद मंदिर-समितिको दिया जाय। यदि कोई किसान कुछ वर्ष तक कर न देता था, तो उससे भूमि छीन ली जाती थी। ऐसी जमीन फिर नीलाम कर दी जाती थी। भूमि बेचने या खरीदने पर ग्राम-सभा उसका पूरा विवरण तथा दस्तावेज अपने पास रखती थी। सारा हिसाब-किताब ताबपत्रादि पर लिखा जाता था। सिंचाई की तरफ विशेष ध्यान दिया जाता था। जल का कोई भी स्रोत व्यर्थ नहीं जाने पाता था। नहरों तालाबों और कुओं की मरम्मत समय-समय पर होती थी। आय-व्यय के रजिस्ट्रों का निरीक्षण करने के लिए राज्य की ओर से अधिकारी नियुक्त किये जाते थे।

“चोल राजा परांतकके समयके शिलालेखसे ग्राम-संस्थाओंकी निर्माण-पद्धतिपर बहुत प्रकाश पड़ता है। उसमें ग्राम-सभाके सभ्योंकी योग्यता-अयोग्यता संबंधी नियम, सभाओंके अधिवेशनके नियम, सभ्योंके सार्वजनिक चुनावके नियम, उपसमितियोंका निर्माण, आय-व्ययके परीक्षकोंकी नियुक्ति आदिपर विचार किया गया है। चुनाव सार्वजनिक होता था। इसकी विधि यह होती थी कि लोग ठीकरियोंपर उम्मीदवारका नाम लिखकर घड़ेमें डाल देते थे, सबके सामने वह घड़ा खोलकर उम्मीदवारोंके मत गिने जाते थे और अधिक मतसे कोई उम्मीदवार चुना जाता था।

“इन संस्थाओंका भारतकी जनतापर जो सबसे अधिक व्यापक प्रभाव पड़ा वह यह था कि वह ऊपरके राजकीय कार्योंसे उदासीन रहने लगी। राज्यमें चाहे कितने बड़े-बड़े परिवर्तन हो जायं, परंतु पंचायतोंके जैसे ही रहनेसे साधारण जनतामें कोई परिवर्तन नहीं दीखता था जन साधारणको परतंत्रताका कटु अनुभव कभी नहीं होता था। इतने विशाल देशके भिन्न-भिन्न राज्योंके लिए यह कठिन भी है कि वे गांवों तककी सब बातोंकी तरफ ध्यान रख सकें। भारतवर्षमें इतने परिवर्तन हुए, परंतु किसीने पंचायतोंको नष्ट करनेका प्रयत्न नहीं किया।”

मुगल बादशाह अपने पतनकालमें जब भूमिकर अत्यधिक और बेदरदी, कड़ाई और पशुतासे वसूल करने लगे और ब्रिटिश सरकारने भी वही नीति बराबर जारी रखी तो वही पंचायतें अत्याचार और हृदयहीनताके साथ सहयोग न कर सकीं और अंततः टूट गईं। पटवारी, जमींदार, तहसीलदार, नायब और सिपाही सभी मनमानी करने लगे। प्रजाकी सुननेवाला कोई न रह गया। अदालतें, वकील, मुख्तार, पेशकार, मुंशी, मुहर्रिर, दलाल, सब-के-सब किसानको बेतरह चूसने लगे और वह बेचारा बरबाद हो गया।

: ७ :

परमाध्यमिक काल

१. मुगलों से पहले

तारीख फीरोज़शाहीमें बरनीने अलाउद्दीन खिलजीके राजमें उन भावोंका विवरण दिया है, जिनपर कि उस समयके अनाज, तेल, घी, नमक आदि बादशाही हुक्मसे बिकते थे । उसने जो भाव दिये हैं उसको आजकलके संयुक्तप्रांतके माने हुए तौलमें नीचे दिया जाता है ।

गेहूँ	एक पैसेमें	दो सेर
जौ	”	साढ़े तीन सेर
धान	”	तीन सेर
खड़ी माश	”	तीन सेर
चनेकी दाल	”	तीन सेर
मोठ	”	एक पैसेरी
खांड	”	साढ़े चार छटांक
गुड़	”	अठारह छटांक
मक्खन	”	साढ़े चौदह छटांक
तिल्लीका तेल	”	साढ़े सत्रह छटांक
नमक	”	नौ सेर

यह भाव बादशाहके हुक्मसे दिल्लीके लिए मुकर्रिर होगये थे । कोई एक धेला भी बढ़ा नहीं सकता था । यह इतना सस्ता है कि जल्दी विश्वास नहीं होता; पर उस समय खाने-पीनेकी सब चीजें इतनी सस्ती थीं कि इस भावसे लोग संतुष्ट थे । यह भाव उस समय सस्ते नहीं समझे जाते थे । यह इतने ऊंचे भाव थे कि सूखेके समयमें भी दिल्लीमें गल्ला भरा रहता था । भाव महंगा करनेके लिए गल्लेकी बिक्री रोक लेना या नाजको जमाकर रखना

घोर अपराध था जिसके लिए बड़ा दंड मिलता था। किसानोंको अपना लगान देनेके लिए अनाजका एक भाग दे देना पड़ता था। अपने खर्चसे ज्यादा बचा हुआ अनाज जहां पैदा होता था वहीं किसानोंको बेच देना पड़ता था। कपड़े, खांड, शकर, चीनी, घी और तेल सबके भाव बाजारोंमें ठहरा दिये जाते थे। सब व्यापारियोंको चाहे वह हिंदू हों या मुसलमान, ठहराये हुए भाव पर लेना-देना पड़ता था। व्यापारी लोग उसी बाजारमें अत्यंत सस्ता खरीदकर उसके आसपास अत्यंत मंहगा बेच नहीं सकते थे। इस तरह बादशाहके अंदर सब बाजार कायदे कानूनके अंदर जकड़े हुए थे। शहन-ए-मंडी जिस किसीको कायदेके खिलाफ चलते हुए देखता था कोड़े लगाता था। दुधार गाय तीन-चार रुपयेमें और बकरी दस-बारह या चौदह पैसेमें भिल जाती थी। कोई दुकानपर जो कम तौलता था तो वजनमें जो कमी होती थी, उसके चूतड़ोंका माँस काटकर पूरीकी जाती थी। जो दूकानदार ज़रा भी गड़बड़ करता पाया जाता था, लात मारकर बाजारसे निकाल दिया जाता था। इसका फल यह होता था कि बनिये कुछ ज्यादा ही तौलते थे। बरनीने इसके चार कारण बताये हैं। (१) बाजारके कायदोंकी सख्त पबंदी (२) करोंका कड़ाईसे उगाहा जाना। (३) लोगोंमें सिक्कोंका बहुत कम प्रचार। (४) कर्मचारियोंकी निष्पक्षता और ईमानदारी।

फ़ीरोज़शाहके समयमें कर और भी घटा दिया गया। जिन खेतोंकी सरकारी नहरोंसे सिंचाई होती थी उनसे पैदावारका दहियक अर्थात् पैदावारका दसवां भाग लिया जाता था। खाने पहननेकी चीज़ें इतनी सस्ती थीं कि अकालके दिनोंमें भी लोग सहजमें विपत्ति काट देते थे। महसूलों और लगानोंकी कमीसे खेती और व्यापारको बहुत लाभ हुआ। शम्स सिराज अफ़ीफ़ने नीचे लिखे भाव दिये हैं--

गेहूं	एक पैसेमें	पौने दो सेर
जौ	”	साढ़े तीन ”
और अनाज	”	” ” ”
दाल	”	” ” ”
बी	”	पौने तीन छटांक
चीनी	”	ढाई ”

कहते हैं कि उस समय बिना खेतीके धरतीका एक टुकड़ा नहीं बचा था ।

मध्यभारतमें बहमनी राज्योंके समयमें दशा कुछ बुरी न थी । इतिहाससे पता चलता है कि जैसा प्राचीन कालसे बराबर चला आता था उस समय गांव-गांव अपना स्वतंत्र शासन रखते थे; हरेक गांवमें पंचायत रहा करती थी जिसका सरपंच उत्तर-भारतमें मुखिया या चौधरी कहलाता था और दक्षिण भारतमें अयगर कहलाता था । मुखिया या अयगरोंको या तो पंचायतकी ओरसे खेत मिल जाता था या फसलपर किसान लोग उपजका कुछ अंश दे देते थे । यह अयगर या मुखिया पंचायतकी ओरसे छोटे-छोटे मुकद्दमे फैसले करते थे, मालगुजारी उगाहते थे । अमन और शांति रखते थे । इन्हीं लोगोंके द्वारा राजा और किसानके बीच संबंध बना रहता था । जान पड़ता है कि यही मुखिया या अयगर काल पाकर जमींदार बन गये । उस समय लगान जरूर बढ़ गया था परंतु जितना बढ़ा हुआ था उस हिसाबसे वसूल किया जाना सिद्ध नहीं होता । लगानके सिवाय पचासों तरहके और महसूल मुसलमान बादशाहोंने लगा दिये थे जिनका व्यवहार शहरोंसे अधिक था । चाहे इन सब उपायोंसे राज्यकी आय बहुत बढ़ जाती रही हो परंतु पूरा महसूल वसूल होकर शाही खजाने तक पहुंचनेमें संदेह है । यह बात सचाईसे कही जा सकती है कि आमदनीके इन उपायोंमें मुसलमान बादशाह

भी किसानकी भलाईका बराबर खयाल रखा करता था, तो भी किसानसे अब बेगार ली जाने लगी। चराई और विवाहका महसूल भी लिया जाने लगा। आजकलके मोटरावन, हथियावन, नचावन आदि भांति-भांतिके 'आवनों'का अभी किसीने सपना भी नहीं देखा था। लोगोंको चुंगीके रूपमें नाज, फल, तरकारी तेलहन और जानवरों पर भी महसूल देना पड़ता था। शहरमें आनेका रास्ता एक ही था और फाटकपर पहरा रहता था। इसलिए शहरवाले महसूलसे बच नहीं सकते थे।

शुरू-शुरूमें जब मुसलमानोंने भारतपर चढ़ाई की तो यहांसे बहुत-सा धन लूट ले गये। पहलेके मुसलमान बादशाहोंमें विजयकी लालसा इतनी रहती थी कि वे बंदोबस्तकी ओर ध्यान नहीं देते थे। देशके भीतर अमन-चैन लानेका काम बलबनने किया। उसने ठगों और लुटेरोंसे देशकी रक्षा की और उनका दमन किया। मुसलमानोंके राजमें कहीं-कहीं किसानोंकी दशा बिगड़ गई थी परंतु अब किसान शांतिसे खेती करते थे और व्यापारी अपना माल एक देशसे दूसरे देशमें बिना लुटे लेजाने लगे। फ़ीरोज़शाहके समयमें जब घोर अकाल पड़ा तो दिल्लीमें अनाज तीन पैसे सेर तक चढ़ गया। अलाउद्दीनके समयमें शाही भंडारों और खत्तोंमें अनाज रक्खा जाता था और अकालके समयमें सस्ता बिकता था। परंतु उसके बाद उसके बनाये कानून टूट गए और चीजें मनमाने भावपर बिकने लगीं। मुहम्मद तुगलकके समयमें नक़्सी सिक्कोंने बहुत नुक़सान पहुंचाया। कोई दस बरसतक घोर अकाल रहा। दो बरसमें सत्तर लाख

१ आजकल अन्धड़ी फसलोंपर जो भाव होता है उससे उस समयके घोर अकालका भाव तिगुना-चौगुना सस्ता था। आजकी सी कमी नहीं है, पैसा तो उस समयकी अपेक्षा बहुत सस्ता है। परंतु किसानके पास पैसे कहाँ हैं ?

रूपये तकावीके लिए किसानोंको बांटे गए। बादशाहने शाही खत्तोंसे नाज निकलवाकर बंटवाया और फकीरों और क्राजियोंको हुक्म हुआ कि मुहताजोंकी फ़ोहरिस्त बनावें। मुहरिरीको साथ क्राज़ी और अमीर गांव-गांव घूमकर अकाल-पीड़ितोंको आदमी पीछे तीन पाव अनाज बांटते थे। बड़ी-बड़ी खानकाहें मदद बांट रही थीं और कुतुबुद्दीनकी खानकाहमें, जिसमें चार सौ साठ आदमी नौकर थे हजारों आदमी नित्य खिलाये जाते थे। हाथकी कारीगरीको बहुत बढ़ावा मिला। चारसौ रेशम बुननेवाले सरकारी कारखानेमें काम करते थे और सब तरहकी चीजें तैयार की जाती थी। वासकके लिखनेसे मालूम होता है कि विक्रमकी चौदहवीं शताब्दीमें गुजरात एक बड़ा अमीर प्रांत था जिसकी आबादी घनी थी। इसमें सात हजार गांव और कस्बे थे और लोग धन संपत्तिमें रंजे-पुंजे थे। खेतीसे पैदावार बड़ी अच्छी होती थी। अंगूरोंकी दो फसल हुआ करती थी। धरती इतनी उपजाऊ थी कि कपासकी शाखायें झाड़की तरह फैल जाया करती थीं और एकबारके लगानेमें वही पौधे कई सालतक बराबर कपासकी ढोंड़ियां दिया करते थे। मारकोपोलोने तो लिखा है कि कपासकी खेती सारे भारतमें फैली हुई थी और कपासके पेड़ छः-छः हाथ ऊंचे होते थे, और बीस-बीस बरसतक कपास होती थी। मिर्च, अदरक और नील बहुतायतसे होती थी। लाल और नीले चमड़ेकी चटाइयां बनती थी जिसमें कि चांदी और सोनेके काम तथा पक्षी और पशुओंके चित्र कढ़े हुए होते थे। मारकोपोलोने यहांके निवासियोंको सुखी और समृद्ध पाया। व्यापारमें कुशल और कारीगरीमें दक्ष देखा।

चौदहवीं शताब्दीमें बंगालको इब्नबतूताने बहुत सुखी और समृद्ध देश लिखा है। उसके समयमें वहां चीजें अत्यंत सस्ती थीं और बहुत थोड़ी आमदनीपर आदमी बड़े ऐश आरामसे गुजर

करता था । इस समयके लगभग सारे भारतमें संपत्ति और समृद्धि बढ़ी हुई थी । दिल्ली और आसपासके प्रांतोंकी आमदनी सात करोड़के लगभग थी और अकेले दुआबेकी आमदनी पचासी लाख थी । चीजें इतनी सस्ती थीं कि आदमी दो चार पैसे लेकर एक जगहसे दूसरी जगहकी यात्रा कर सकता था । दिल्लीसे फीरोजाबादतक जानेके लिए गाड़ीमें एक आदमीकी जगहके लिए दो आने देने पड़ते थे । एक खच्चर किरायेपर करानेके लिए तीन आने देने पड़ते थे । छः आनेमें किरायेका एक घोड़ा मिल जाता था और एक अठन्नी देनेपर एक पालकी मिल जाती थी । कामके लिए कुली बहुत आसानीसे मिल जाते थे और वे अच्छी कमाई भी कर लेते थे । सबके पास सोने और चांदीकी बहुतायत थी, औरतें गहनोंसे लदी हुई थीं और कोई घर ऐसा न था जिनमें बड़े अच्छे बिछौने, गद्दे, मसहरियां और कोच न होते ।

परंतु १४ वीं शताब्दीसे देशकी दशा बिगड़ने लगी । व्यापार और खेती दोनोंकी दशा कुछ उतारपर हुई । चौदहवीं शताब्दीके अंतमें महवान नामक यात्री, जो चीनी च्वांगहोके साथ आया था, लिखता है कि बंगालमें चावलकी दो फसलें होती हैं और गेहूं, तिल, तरह-तरहकी दालें, ज्वार, बाजरा, अदरक, सरसों, प्याज, भंग, बैंगन और भांति-भांतिकी साग-सब्जी बंगालमें बहुतायतसे होती है । केला और बहुतसे फल बहुतायतसे होते हैं । इस देशमें चाय नहों होती और मेहमानोंको चायके बदले पान दिया जाता है । नारियल, चावल, ताड़, आदिसे शराब बनती है और बाजारमें

१. धनकी बहुतायत थी । सिक्कोंकी बहुतायत न थी । चांदी सोनेके गहने बनते थे । यह बहुमूल्य धातुएं उचित रीतिपर कलाके काममें आती थीं । आज इस दरिद्र देशमें जब आदमी दानोंको तरस रहा है, गहने कहां पावे । परंतु गहनोंका जहां थोड़ा बहुत रिवाज है वहां उसी प्राचीन कलाकी छाया समझनी चाहिए ।

बिकती है। इस देशमें पांच-छः तरहके बहुत बारीक सूती कपड़े बुने जाते हैं। रेशमी रुमाल और टोपियां जिनपर सोनेका काम होता है। चित्रकारी किये हुए सामान, खुदे हुए बरतन, कटोरे, इस्पातके सामान जैसे तलवार, बंदूक, छुरी, कैंचियां सभी तरहकी चीजें इस देशमें तैयार होती हैं। एक तरहका सफेद कागज भी एक पेड़की छालसे बनता है जो हरिनकी खालकी तरह चिकना और चमकदार होता है।

अरबका राज्यकाल पिछले दो हजार बरसोंके भीतर सब तरहसे बहुत अच्छा समय मममा जाता है। यह समय आजसे केवल साढ़े तीन सौ बरस पहले हुआ है। हम इस कालसे अपने कालका मुकाबला कर सकते हैं। हम गेहूँके भावको प्रमाण मान लें तो आज कल उसे पंद्रह-सोलह गुना बढ़ा हुआ पाते हैं। दूधका भाव ग्यारह गुना बढ़ा हुआ है। घी सोलह गुना ज्यादा मंहगा है। परंतु मजूरीका भाव कितना बढ़ा? पहले एक रुपया रोजमें बीस मजूर या बीस कुली मिल जाते थे। आज शहरोंमें ज्यादासे ज्यादा बढ़ा रेट दस रुपयेमें बीस कुली है। इस तरह चीजोंका भाव जितना ऊंचा चढ़ गया है उतनी ऊंची मजूरी नहीं चढ़ी। होशियारसे होशियार बढ़ई सवा रुपये रोजमें मिलता है। उस समय ग्यारह पैसे रोजमें मिलता था। बढ़ईकी मजूरी साढ़े सात गुनीसे ज्यादा नहीं बढ़ी। यह नतीजा निकालनेमें किसी अर्थशास्त्रीको संकोच नहीं होसकता कि उस समय से इस समय मंहगी सोलह गुनी बढ़ गई है और मजूरी उसके मुकाबलेमें बहुत कम बढ़ी है। इससे मजूरीकी दशा उस समयके मुकाबलेमें बहुत गिरी हुई है। लगान उस कालमें अधिकांश पैदावारका ही एक अंश लिया जाता था। किसान प्रायः रुपये नहीं देता था इसलिए जब जितनी पैदावार हुई उतनेका निश्चित अंश ही देना पड़ा। आज तो ऐसा नहीं है। आज देनेकी रकम बंदोबस्तके समयमें अंधाधुंध बढ़ जाती है; फिर चाहे सूखा पड़े या चाहे टिड्डी लग जाय या बाढ़ बहा लेजाय, पर

किसानको सरकारी लगान उतना ही देना पड़ता है । किसी खेत से, जहां बीस मन अनाज होता था वहां दो मन लगानमें दे दिया जाता था । उसी खेतमें जब केवल दस मन होता तो लगान भी मन ही भर दिया जाता था और इतनेहीमें किसानका देना चुकता समझा जाता था । आज अगर किसी खेतके लगानके बीस रुपये देने हैं तो वह रकम देनी ही पड़ेगी, चाहे पैदावार कितनी ही कम हो । इस तरह उस समयके मुकाबलेमें इस समय किसानकी हालत बिलकुल रही है ।

तीसरी बड़ी बात यह है कि बादशाहोंकी ओर से जो कुछ लगान मुकर्रर होता था, वह सबका सब वसूल नहीं होसकता था । आज लगान जिस कड़ाईसे वसूल किया जाता है उससे भी किसानों कीबिलकुल बरबादी है ।

२. मुग़लोंका समय

अकबरके समयमें खेती और किसानोंकी दशा वैसे ही अच्छी थी जैसी कि पठान बादशाहोंके समयमें थी । अलाउद्दीन के समयमें खाने-पीने, पहिननेकी चीजोंके जो भाव मुकर्रर कर दिये गये थे, उनकी पाबंदी बड़ी कड़ाईसे होती थी । परंतु अकबर के समयमें वह कड़ाई नहीं थी, तो भी सभी चीजें बहुत सस्ती थीं । इससे पता चलता है कि उस समय लोग बहुत सुखी और धनवान थे । उसके समयमें जो सिक्का चलता था और जिस मन के तौलका प्रमाण माना जाता था उसका वर्णन आईने-अकबरी में मौजूद है । आजकल जो सिक्के चलते हैं और जो तौलका प्रमाण है वह तबसे बहुत भिन्न है । हिसाब लगाकर हमने नीचे आजकलके हिसाबसे उस समयके हिसाब दिये हैं--

गेहूं	एक पैसेमें	तेईस छटांक
जौ	„	पैंतीस „
उत्तमसे उत्तम चावल	„	ठाई „

अत्यन्त मामूली चावल एक पैसे में	चौदह	छटांक
मूंगकी दाल	साढ़े पंद्रह	„
माशकी दाल	सत्रह	„
मोठकी दाल	तेईस	„
चना	साढ़े सोलह	„
ज्वार	अठ्ठाइस	„
सफेद चीनी	सवा दो	„
शकर	पांच	„
घी	पौने तीन	„
तिलका तेल	साढ़े	„
नमक	सत्तर	„
दूध	ग्यारह	„

इस तरह गेहूं रुपयेमें सवा दो मनसे ज्यादा मिलता था और मामूली चावल डेढ़ मनके लगभग मिलता था सबसे उत्तम प्रकार-का चावल दस सेरका था। घी रुपयेमें साढ़े दस सेर पड़ता था। दूधका भाव एक रुपयेमें नौ पसेरी था। और सब तरहकी चीजें भी इसी तरहके भावपर मिलती थीं। मामूली भेड़ रुपये डेढ़ रुपयेमें मिल जाती थी। भेड़का मांस एक रुपयेमें अठारह सेर मिलता था। मजूरी बहुत सस्ती थी। रुपया रोजमें बीस मजूर काम कर सकते थे। बड़ा ही होशियार बड़ई ग्यारह पैसे रोजमें काम करता था। एक मर्दके लिए एक महीना भरके अनाजका खर्च साढ़े तीन आनेसे ज्यादा नहीं था। उस समयका अमीर आदमी अपने भोजनमें आठ आने महीनेसे ज्यादा खर्च नहीं कर सकता था। शहरके रहनेवाले पांच आदमियोंके एक अमीर परिवारका सारा खर्च तीन रुपये महीनेसे ज्यादा नहीं होता था। यह शहरके रहनेवालोंका खर्च हुआ। देहातके रहनेवालेको

तो पैसे खर्च करनेका कोई काम न था। खेतकी पैदावारसे ही जब शहरवाले जीते थे, तब देहातोंके क्या कहने हैं।

कताई और बुनाईका काम पहलेकी तरह सारे भारतमें फैला हुआ था और अब इन कामोंमें मुसलमान भी पूरा हिस्सा लेकर थे। राजधानी आगरेमें और फतहपुर सीकरीमें बारीक कपड़ों के सिवाय शतरंजी, कालीनें और बहुत अच्छे-अच्छे फर्श और पर्दोंके कपड़े भी बुने जाते थे। गुजरातमें पाटन और खानदेशमें में बुहरानपुर और ढाकेमें सुनारगांव सूती कपड़ोंके लिए मशहूर थे। इन कपड़ोंका नाम ही ढाका, पाटन, बुरहानपुरी और मह-मूदी आदि मशहूर था। सब तरहके सूती मालका खास बाजार बनारस था। पटनेमें भी कपास, खहर, खांड, अफीम आदिका बड़ा भारी व्यापार था। फैजाबाद जिलेका टांडा रुईके मालका बहुत बड़ा बाजार था। गांवके उद्योग-धंधे जैसे युगोंसे चले आते थे अकबरके समयमें भी उसी तरहसे बराबर हो रहे थे। उसमें किसी तरहकी कमी नहीं आई थी। गांव और किसान उसके जान-मालकी रक्षा कुछतो किसान आप ही कर लेता था, कुछ पंचायत के प्रबंधसे होता था और कुछ सरकारी बंदोबस्त भी था। कोई ऐसा कारण समझमें नहीं आता कि किसानको आजके मुकाबले उस समय कम सुरक्षित समझें। आज भी लुटेरोंसे किसान उसी तरह सुरक्षित है जैसे उस समय था। परंतु अकबर सहृदय शासक था और आजका शासन निष्प्राण हृदयहीन यंत्र है, जो निस्सहाय किसानको चूसकर उसका सारा तेल निकाल लेता है और उसे रक्तहीन छोड़ देता है। किसानकी क्या रक्षा हुई? इस यंत्रसे उसकी रक्षा करनेवाला कौन?

जहांगीर और शाहजहां तो अकबरके पद चिह्नपर चलते थे। उनके समयमें गांवोंकी दशा, भारतक्री आर्थिक और सामा-जिक दशा वैसी ही रही जैसी अकबरके समयमें। औरंगजेबके

समयमें अवनतिका कुछ आरंभ हुआ। उसके बादके बादशाहोंने तो लुटिया ही डुबोई।

३. औरंगजेब काल और ब्रिटिशोंका चूसनेवाला रोजगार

ईस्ट इंडिया कंपनीके एक बोल्ड्स नामक कर्मचारीने लिखा है कि संवत् १८४७ में मालाबारके समुद्र तटपर अंग्रेजी बेड़ेने हिंदुस्तानी जहाजोंकी अंधाधुंध लूट की और अपार धन इकट्ठा कर लिया। बंगालमें जाब चानाक नामके अफसरके अधीन, जो कि हुगलीमें ईस्ट इंडिया कंपनीका सबसे बड़ा कारखानेदार था, अंग्रेज सेनाके भाग्यने बहुतसे पलट खाये। बंबईमें कंपनीके गवर्नर सर जान चाइल्डने अपने नासमझीके व्यवहारसे संवत् १७४७ के आषाढ़के महीनेतक युद्ध जारी रखा। यह व्यवहार कंपनीके लिए घातक ठहरा क्योंकि इसमें कंपनीको साठ लाखसे अधिक रुपयेका नुकसान हुआ। उनके साथ जो रिआयतेंकी गई थीं वे छिन गई और भारतीयों और मुगलोंके बीचसे उनकी साख उठ गई। सूरतके सूबेदार सैदी याकूब ने बंबईपर दखल कर लिया, कंपनीके कारखानेदारोंको कैद कर लिया और उनकी गर्दनोमें जंजीर बंधवाकर सड़कोंपर फिराया।

इस युद्धमें हार जानेके कारण अंग्रेजोंको संधिकी प्रार्थना करनी पड़ी और उस समयके सम्राट औरंगजेबसे इस प्रकार क्षमा मांगनी पड़ी। उन्होंने अंग्रेज राजदूतके नामसे अपने दो कारखानेदारोंको दिल्ली भेजा। एक तो जार्ज वैल्डन था और दूसरा अब्राहमनवार नामका यहूदी था। दोनों औरंगजेबके हुजूरमें लाये गये। दूतोंके लिए यह एक बिल्कुल नया ढंग था। उनके दोनों हाथ बंधे हुए थे और उनको सम्राटके सामने साष्टांग दंडवत् करना पड़ा। सम्राटने बड़ी लानत मलामत की और तब पूछा

कि तुम क्या चाहते हो ? उन्होंने बड़ी दीनतासे अपने कसूरोंको कबूल किया और माफी मांगी । फिर यह प्रार्थना की कि जो फरमान हुजूरसे ज़ब्त किया गया है वह फिर जारी किया जाय और सैदीको सेना सहित बंबईके टापूसे लौटा लिया जाय ।

औरंगजेब बड़ा दयालु और बुद्धिमान राजा था । उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और इस शर्तपर माफ कर दिया कि नौ महीने-के अंदर गवर्नर चाइल्ड हिंदुस्तान छोड़ दे और फिर न लौटे । फरमान इस शर्तके ऊपर जारी किया गया कि जिस रिआयाको लूटा गया है, जिनसे कर्ज लिया गया है और जिनका जो कुछ अंग्रेजोंसे नुकसान हुआ है उन सबको धन देकर संतुष्ट कर दिया जाय । मुगल सम्राटकी कृपासे मामला तय हो गया और बंगालमें कंपनीके एजेंट जाबचानाकने अंग्रेजोंको फिरसे अपने कारखानोंमें आनेके लिए आज्ञा प्राप्त कर ली । इसके बाद कंपनीने भारतके कई भागोंमें अपने कारखाने खोल लिये । ये कारखाने अधिकांश कपड़ेके थे । कपड़ेका रोज़गार औरंगजेबके समयमें बहुत बढ़ा-चढ़ा था । उत्तर भारतमें भारतके एक सिरेसे दूसरे सिरेतक गांव-गांवमें चरखा कतता था और खद्दर बुना जाता था । मुगलोंके राजके अंततक और ईस्ट इंडिया कंपनीके राज्यके आरम्भ तक बाफताके लिए पटना, टांडा, चटगांव, इलाहाबाद, खैराबाद, बीरभूम और लखीमपुर मशहूर थे । इन स्थानोंके सिवाय खासे-के लिए हरियल, शांतिपुर, मऊ और लखनऊका नाम था । चंदरकोना, शांतिपुर और हरिपालकी डोरिया सबसे अच्छी समझी जाती थी । महमुदीके लिए टांडा, इलाहाबाद खैराबाद, जोहाना और लखनऊका नाम था । ढाका, पटना, शांतिपुर, मेदनीपुर, गाजीपुर, मालदह और बनारस आदि स्थान मशहूर थे ! सन्नोंके लिए और तरींदमके लिए इन सब स्थानोंके सिवाय हरीपाल, बुढ़ावाल, कासिमाबाद, शांतिपुर, बालासोर

और कोहना खास जगह समझी जाती थी। ये सब इन कपड़ों-के बाजारोंके नाम हैं। इन बाजारोंके आसपासके गांवोंमें बड़े जोरोसे इन कपड़ोंका काम होता था कि निर्मली और इंदूरी तलवारें, बरछे और खंजर यहीसे सारे भारतमें जाते थे। और दमिश्ककी मशहूर तलवारके लिए यहीसे लोहा जाता था और शमशीर-ए-हिंदका नाम मशहूर करता था। हीरे और सोनेके लिए गोलकुंडाका राज संसारमें प्रसिद्ध था ! और मछलीपट्टमके बंदरगाहसे भारतके जहाज संसारके समुद्रोंमें आते-जाते थे। खेती उसी तरह वहां भी उपजाऊ थी जैसी कि उत्तर भारतमें, और जंगलोंकी पैदावार उसी तरह धन-धान्य देने वाली थी। सारे भारतमें जहां तक किसानोंका संबंध है निरंतर शांतिका साम्राज्य था किसानोंका इतना आदर था कि कड़ाई करनेवाले हाकिमोंकी जब लोग शिकायत करते थे तो वह बहुत करके बरखास्त कर दिये जाते थे। शाहजहानने दाराशिकोहको राजगद्दी पानेके लिए अपनी बिमारीमें उपदेश किया कि किसानोंको और सेनाको खुश रखना। औरंगजेबने अपने लड़कोंको रैयतको खुश करनेके लिए बारंबार उपदेश किया है इन बादशाहोंका जैसा उपदेश था वैसा ही अपना आचरण भी था। औरंगजेबकी बादशाहतके जमानेमें प्रजाको कुछ कष्ट होने लगा। प्रजा पर जुल्म होने लगा। औरंगजेब अपने पूर्वजोंकी अपेक्षा अधिक कट्टर था। हिंदुओं पर उसकी कड़ी निगाह थी। उसने सारी हिंदू प्रजा पर ज़िजिया लगाया और मुसलमानोंका पक्षपात किया। साधारणतया कड़े प्रकारके महसूल जो हिंदुओंको देने पड़ते थे, मुसलमानोंको नहीं देने पड़ते थे। अनेक अपराधोंमें मुसलमान छोड़ दिया जाता क्योंकि काफिर हिंदुओंके विरुद्ध अपराध करनेमें मुसलमान दोषी नहीं समझा जाता था। किसान सालके साल मेहनत करता था परंतु लड़ाईके कारण शत्रु या बलवान जमींदार उसे लूट

लेता था या उसके धनका अपहरण कर लेता था। संवत् १७१५ और १७१६ के लगभग इन्हीं कारणोंसे अनाज महंगा बिकने लगा था। नाके-नाके पर, घाटों पर, पहाड़ी गुजरगाहोंपर और सरहदोंपर जो माल गुजरता था उस पर राहदारीका मालका दशमांश महसूल देना पड़ता था। यह कहलाता था राहदारीका महसूल। परंतु महसूल लेनेवाले लोग जुल्म करते थे और कड़ाई करते थे और कई गुना अधिक वसूल कर लेते थे। इससे किसानोंके ऊपर सारा बोझ आ पड़ता था। औरंगजेबने पीछे इस तरहके महसूल उठा दिये तब कहीं जाकर भाव सुधरे और अनाज ठीक तरहसे बिकने लगा।

इन सब बातोंके होते हुए भी मुगलोंके साम्राज्यके अंतमें भी गल्लेका भाव प्रायः अकबरके समयके ही लगभग रहा।

: ८ :

कंपनीका कठोर राज्य

ईस्ट इंडिया कंपनी संवत् १३५७ में ७० हजार पौंडकी पूंजीके साथ भारतमें रोजगार करनेके लिए कायम हुई थी। उस समय इंग्लैंडकी सरकारने उसे एक हुक्मनामा देकर भारतके साथ रोजगार करनेका इजारा दे दिया था। कंपनीके सिवाय इंग्लैंडका कोई बाशिंदा भारतके साथ रोजगार नहीं कर सकता था। कंपनीका यह हुक्मनामा हर बीसवें बरस बदला जाता था। भारतमें अशांति और बदइंतजामी होनेसे, कंपनी भारतकी मालिक बन गई, किंतु इंग्लैंडमें उसका वही पहला ही पद बना रहा। उसके हुक्मनामेका हर बीसवें वर्ष बदला जाना जारी रहा।

विक्रमकी अठारहवीं शताब्दीतक भारतके गांव जैसे अनाज उपजाते थे, वैसे ही हाथकी कलाओंमें भी कुशल थे। भारतके कर्घोंसे बने हुए कपड़े एशिया और यूरोपके बाजारोंको भरे हुए

थे । परंतु देशकी इस कोमल कलाको आर्थिक कूटनीति और लूटकी भारी भुजाओंने दबा लिया । युगोंके ठोस उद्योग और रोजगारको कुचल डाला । देशको विदेशी कपड़ोंके सबसे बड़े मोहताजकी दशाको पहुंचा दिया । इस प्रलयकारी फेरफारसे, भारतका दरजा सबसे बड़े बेचनेवालेसे, सबसे बड़ा खरीदने-वाला हो गया ! बात यह थी कि पार्लमेंट और ईस्ट इंडिया कंपनीने व्यापारमें हर तरह अपना स्वार्थ देखा । पहले तो उन्होंने भारतवर्षमें कारखाने खोले, और उन कारखानोंमें यहांके दस्त-कारोंको काम करनेके लिए मजबूर किया । धीरे-धीरे उन्होंने जहांतक बन पड़ा, देशके भारतीय कारखानोंको हथिया लिया अथवा बंद करा दिया । परंतु जब विलायतमें वहांके कारी-गरोंने बहुत हल्ला मचाया, तब बाधक कर लगाये गए ।

विक्रमकी उन्नीसवीं सदीके प्रारंभिक कालमें, विलायतकी दस्तकारियोंको बढ़ानेके लिए उन्होंने हिंदुस्तानी मालको विला-यत जानेसे रोकनेवाले कानून बनाये । उनकी यह निश्चित नीति रही कि भारत विलायतकी दस्तकारियोंकी उन्नतिका एक साधन बन जाय और वहांके कारखानों तथा करघोंके लिए कच्चा माल तैयार करनेवाला एक देश ही रह जाय ।

इस नीतिका पालन सख्तीसे किया गया और इसमें उन्हें सफलता प्राप्त हुई । भारतमें रहनेवाले गोरे अधिकारियोंको कंपनी-के कारखानोंमें काम करनेके लिए, भारतीय दस्तकारोंको लाचार करनेकी आज्ञा दी गई । भारतीय जुलाहोंके गांवों तथा उनकी जातियोंके ऊपर, कंपनीके व्यापारिक रेजिडेंटोंको बहुत बड़े-चढ़े अधिकार दिये गये । अधिक महसूल लगाकर भारतके सूती और रेशमी कपड़ोंका विलायत जाना रोका गया । अंग्रेजी चीजें बिना महसूल दिये ही, या कुछ नाम भरके महसूल पर भारतमें आने दी गई ।

इतिहासवेत्ता विलसनके शब्दोंमें, ब्रिटिश दस्तकारने राजनीतिक हथियारोंसे अपने मुकाबलेवाले हिंदुस्तानी कारीगरको दबाया। क्योंकि दोनोंको बराबर सुभीते होते तो ब्रिटिश कारीगर हिंदुस्तानीका सामना न कर सकता। फल यह हुआ कि यहांके लाखों दस्तकारोंकी रोज़ी मारी गई और यहांकी संपत्तिके उपजानेका एक द्वार ही बंद हो गया।

इस देशके ब्रिटिश-कालीन इतिहासमें इस दुःखद घटनाका वर्णन इसलिए जरूरी है कि हम समझें कि हम इतने दरिद्र क्यों हैं और हमें खेतीका ही अकेला सहारा क्यों रह गया है। यूरोप में भापके बलसे चलनेवाले करघोंके चल पड़नेसे हमारे कारीगर बरबाद हो गए और जब हमारे यहां कल-कारखाने चले तो इंग्लिस्तान अन्याय और डाहसे काम लेने लगा। उसने हमारी सूतकी कारीगरी पर कर बैठा दिया। इसका फल यह हुआ कि हमारे कारीगर जापानी और चीनी दस्तकारोंके मुकाबलेके भी नहीं रहे। तबसे यह कर हमारी भापसे चलनेवाली नई कलोंका गला घोटता रहा है। जिन लाखों करोड़ों दस्तकारोंकी रोज़ी मारी गई, वे बेचारे अपने-अपने गांवोंमें मजूरी और खेती आदि धंधों पर टूट पड़े, जिसे जो रोजगार पेट पालनेको मिला, कर लिया। बेचारे लाचार होकर भंगी डोम तकका काम करने लगे। जमीन बढ़ी नहीं, खेतिहर बढ़ गए। पैदावार बट गई, खानेवाले बढ़ गए। हट्टे-कट्टे काम करनेवाले ज्यादा रोटीके लालचसे विदेशोंमें काम करने चले गए, गांव उजड़ गए। संसारके अनेक निर्जन टापू गुलामोंसे बस गए। आज अब यह दशा है कि हमारे देश की राष्ट्रीय-संपत्तिका एक ही द्वार खेती रह गई है और आज हमारे देशके हर पांच आदमीमें चार तो खेती पर ही दिन काटते हैं। परंतु ब्रिटिश सरकार द्वारा जो भूमि कर वसूल किया जाता है वह एक तो बहुत ज्यादा है, दूसरे कई प्रांतोंमें तो वह

इतना अनिश्चित है कि उसमें खेतीकी तरकी करनेका कभी किसीको हौसला नहीं हो सकता । कर बढ़ता ही जाता है । इंगलिस्तानमें संवत् १८५५ तक भूमिकर लगानके सैकड़ा पीछे ५ और २० के बीचमें था । उस समय के प्रधान मंत्री पिटनें उसको सदाके लिए ठहरा दिया । यहां संवत् १८५० और १८७६ के बीचमें बंगालमें भूमिकर लगानका सैकड़ा पीछे और उत्तरी भारतमें सैकड़ा पीछे ८० रक्खा गया । यह सच है कि इतना भारी भूमिकर लगानेमें अंग्रेजी सरकारने अपने पहलेके मुसलमान बादशाहोंकी ही नक़ल की थी । परंतु इन दोनोंमें यह अंतर था कि मुसलमान शासक जितना मांगते थे उतना कभी वसूल नहीं कर पाये । परंतु अंग्रेजी सरकार जो कुछ मांगती रही है उसे कड़ाईके साथ वसूल भी करती आई है । बंगालके अंतिम मुसलमान हाकिमने अपने राजके आखिरी साल संवत् १८२१में, सवा करोड़से कम ही रुपये मालगुजारी वसूल की थी । बंगालसे अंग्रेजी सरकार तीस वर्षके अंदर ही ४ करोड़ २ लाख रुपये सालकी मालगुजारी वसूल करने लगी । संवत् १८५६में अवधके नवाबने इलाहाबाद और कुछ और जिले अंग्रेजी सरकारको दिये, जिनसे वह दो करोड़ २॥ लाख रुपये वार्षिक मालगुजारी मांगता था । तीन वर्षके भीतर अंग्रेजी सरकारने इनकी मालगुजारी बढ़ाकर २ करोड़ ४७॥ लाख रुपयेसे अधिक कर दी । मद्रासमें पहले-पहल ईस्ट इंडिया कंपनीने भूमिकर नियत किया । बंबईमें संवत् १८७४में मराठोंसे जीती हुई भूमिकी मालगुजारी १ करोड़ २० लाख रुपये थी । कुछ ही वर्षोंके अंग्रेजी शासनके पीछे वह बढ़कर सवा दो करोड़ रुपये कर दी गई और तबसे वह लगातार बढ़ती ही जा रही है । पादरी हैबरनने समस्त भारतमें यात्रा करने और सब अंग्रेजी तथा देशी राज्योंका निरीक्षण करनेके पीछे संवत् १८८३में लिखा था कि कोई "देशी शासक इतना

भूमिकर नहीं मांगता जितना हम मांगते हैं”। संवत् १८८७में कर्नल ब्रिग्जने लिखा था कि “भारतका वर्तमान भूमिकर प्रायः समस्त लगानके बराबर है। इतना भूमिकर एशिया अथवा यूरोप-में किसी भी शासकके समय कभी नहीं सुना गया।”

बंगाल और उत्तरी भारतके मनुष्योंके लिए अंग्रेजी शासनके प्रारंभिक समयके इस भारी भूमिकरका बोझ धीरे-धीरे कुछ हलका हुआ। बंगालमें भूमिकर स्थायी नियत कर दिया गया और इसलिये कृषिकी वृद्धिके साथ-साथ उसमें वृद्धि नहीं होपाई है। अब वह लगानका केवल ३५ प्रतिशत रह गया है। (इसीमें कुछ अन्य कर भी सम्मिलित हैं।) उत्तरी भारतमें भूमिकर स्थायी तो नहीं किया गया परंतु संवत् १९१२में वह घटाकर लगानका ५० प्रति सैकड़ा कर दिया गया। परंतु पीछे कुछ नवीन कर और भी लगा दिये गए, जिनके कारण भूमिकर बढ़कर लगानका ६० प्रति सैकड़ा होगया। जमीदारोंने अपना सारा बोझ इजाफा लगान करके दरिद्र किसानों पर डाल दिया। अंतमें सब तरहसे किसानोंकी ही बरबादी हुई।

मद्रास और बंबईकी अवस्था और भी खराब है। वहां कृषक लोग सरकारको भूमिकर सीधे अदा करते हैं। उनके तथा सरकार-के बीच कोई जमीदार मालगुजार या ठेकेदार नहीं है। संवत् १९२१में सरकारने आर्थिक लगानका आधा मालगुजारीके रूपमें वसूल करनेकी अपनी इच्छा प्रकटकी थी, परंतु सरकार लगभग सारा आर्थिक लगान वसूल कर लेती है, और बेचारे किसानोंको अपने मेहनत-मजदूरी और औजारों, चौपायों इत्यादिमें लगे हुए धन पर लाभके सिवा कुछ भी नहीं बचता। हर तीसवें बरस नया बंदोबस्त होता है। किसान जान भी नहीं पाता कि उसका

१. श्री रमेशचंद्रदत्तके प्रसिद्ध ग्रंथ “ब्रिटिश भारतके आर्थिक इति-हासकी भूमिकासे संकलित।

लगान किस कारणसे बढ़ाया जा रहा है । उमके सामने बस दो रास्ते रह जाते हैं, या तो वह बड़े हुए लगानको मान ले या अपने चाप-दादोंके खेतको छोड़कर भूखों मरे । लगानकी यह आये दिनकी घट-बढ़ खेतीको बढ़ने नहीं देती । किसानोंको कुछ बचत भी नहीं होने देती और उन्हें दरिद्र और कर्जदार बनाये रखती है ।

भारतमें भूमिकर केवल भारी और डावांडोल ही नहीं है, बल्कि जिन सिद्धांतों पर लगान बढ़ाया जाता है वे जगत्से निराले हैं । और देशोंकी सरकार जनताका धन बढ़ानेमें सहायता देती है, अपनी प्रजाको धनी और रंजी-पुंजी देखना चाहती है और फिर उसकी आयका बहुत थोड़ा अंश उसको रक्षाके लिए मांगती है । भारतकी सरकार कर लगाकर धनके इकट्ठा होनेमें बाधा डालती है । किसानोंकी आयको रोकती है और लगभग हर नए बंदोबस्तके समय अपनी मालगुजारी बढ़ाकर किसानोंको सदा ही दरिद्र रखती है । इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, संयुक्तराज्य आदि देशोंमें सरकार अपनी प्रजाकी आय बढ़ाती है, उनकी वस्तुओंकी खपतके लिए नये-नये बाजार दृढ़ती है, भरसक बाजारोंके ऊपर अधिकार जमानेकी चढ़ा-ऊपरीमें महासमर तक होजाते हैं, उनकी आयके लिए नवीन द्वार खोलती है, उनकी भलाईके लिए मर-मिटती है, और उनके बढ़ते हुए ऐश्वर्यके साथ आप भी ऐश्वर्यवाली बनती है । भारतमें अंग्रेजी सरकारने न तो नई दस्तकारियोंके चलानेमें सहायता दी; और न उसकी पुरानी दस्तकारियोंको ही नया जीवन दिया, उलटे वह हर बंदोबस्तके समय भूमिकी पैदावारसे मनमानी आमदनी करनेके लिए उलट-फेर किया करती है । मद्रास और बंबईमें लोग हर नए बंदोबस्तको अपने और सरकारके बीच एक युद्ध समझते हैं, जिसमें सरकार और प्रजाके बीच परस्पर स्वार्थोंकी छीना-झपटी होती रहती है । और इस लड़ाईका निर्णय करनेके लिए कानूनमें कोई ठीक विधान या

सीमा नहीं है । मालके, हाकिमोंका झौसला आखिरी होता है जिसकी कहीं अपील नहीं है । सरकारकी आय और प्रजाकी दरिद्रता नित्य बढ़ती ही चली जाती है ।

धरतीसे जल खींचकर सूर्य मेघ बनाता तो है परंतु वह मेघ अपने लिए नहीं बनाता । वर्षाके रूपमें हजार गुना अधिक फैला कर उमी धरतीको लौटा देता है ।^१ कविने अपने यहां कर या लगान लेनेकी नीतिका इसी तरह हजारों गुना अधिक बखान किया है । परंतु भारतभूमिसे खींचा गया कर रूपी जल आज विदेशोंमें ही बरसता और विदेशोंको उपजाऊ बनाता है । हर एक देश उचित रीतिसे यही चाहता है कि उसके देशसे वसूल किया गया टैक्स या कर वहीं खर्च किया जाय । अंग्रेजोंके आनेसे पहले भारतके बुरेसे बुरे हाकिमोंके समयमें भी यही बात थी । पठान और मुगल बादशाह जो अपार धन सेनामें खर्च करते थे पर उससे तो यहीके बहुतसे बड़े-बड़े चरानोंका और लाखों परिवारोंका पालन होता था । वे जो बड़े-बड़े सुंदर महल बनानेमें या सुख और भोगविज्ञासकी चीजोंमें या दिखावटी ठाट-बाटमें धन लगाते थे, वह धन इसी देशके कारीगरों और दस्तकारोंके हाथमें जाता था और उनका हौसला बढ़ाता था । सरदार, सूबेदार, सेनापति, दीवान, काज़ी और उनसे छोटे हाकिम भी अपने मालिकोंकी देखादेखी वैसा ही बरताव करते थे, और अनेकों मस्जिद, मंदिर, सड़कें, नहरें और तालाब उनकी उदारताके गवाह हैं । वे धनको बेहिसाब उड़ाते भी थे तो वह उड़कर भी भारतके ही वायुमंडलमें फैल जाता था, कहीं बाहर न जाता था । बुद्धि-

१. प्रजानामेव भूत्यर्थं सताभ्यो बलिमग्रहीत् ।

सहस्रगुणमुत्सृष्टुमादत्ते हि रस रविः ॥ रघुवंश । १ । १८

रवि जैसे हजार गुना वरस देनेके लिए रस लेता है, वह (राजा) प्रजाओंका धन बढ़ानेके लिए ही उनसे कर लेता था ।

मान् और मूर्ख दोनों तरहके शासकोंके समयमें भी करके रूपमें वसूल किया हुआ धन लौट कर प्रजाके ही व्यापार और दस्त-कारियोंको बढ़ाता था । पर भारतमें ईस्ट इंडिया कंपनीके राज्य-का आरंभ होते ही दशा बदल गई । कंपनी भारतको एक बड़ी जागीर या बड़ा खेत समझती थी, जिसका लाभ यहांसे जाकर यूरोपमें जमा होता था । भारतकी सरकारमें मोटी तनख्वाहोंवाले और आमदनीके जितने ओहदे थे, कंपनी अपने देशवालोंको ही देने लगी । भारतकी आयसे व्यापारकी वस्तुएं मोल लेती थी और फिर उन्हें अपने निजी लाभके लिए योरपमें लेजाकर बेचती थी । व्यापारमें लगी हुई अपनी पूंजीका भारी व्याज वह भारतसे कड़ाईके साथ वसूल करती थी । सारांश यह कि भारतमें भारी करसे जो कुछ वसूल किया जा सकता था, उसमें-से बहुत जरूरी बंदोबस्ती खर्चोंके पीछे जो कुछ बचता था, वह किसी-न-किसी तरह योरप पहुंचाया जाता था ।

: ६ :

विक्टोरियाके राजसे वर्तमान काल तक

१. भारतका रक्त चूसा जाना

जब संवत् १८६४में अंग्रेजी राजगद्दी पर विक्टोरिया बैठी उस समय कंपनीने भारतकी जितनी हानि करनी थी, करली थी । भारतके रेशमी रुमाल यूरोपमें अब भी बिक रहे थे, और यहांके तैयार रेशमी माल पर अब भी वहां कड़ा महसूल लगता था । पार्लेमेंटने कमीशन बैठाकर इस बातकी जांचकी कि ब्रिटिश करघों-के लिए भारतमें रुई कैसे उपजाई जा सकती है, यह न पूछा कि भारतीय करघोंकी बढ़ती कैसे कराई जाय । लगातार डेढ़ सदी-के लगभग भारतके गोरे प्रभुओंकी नीति यही रही है कि ब्रिटिश कारखानोंकी बढ़ती भारतके द्वारा कैसे की जाय । भारतके

कारीगरोंकी भलाईका कोई खयाल नहीं रहा। भारतकी बनी चीजें जो जहाजोंमें भर-भर कर विलायत भेजी जाती थी, वह धीरे-धीरे सपनेका धन होती गई।

हम पिछले वर्षोंमें यह देख चुके हैं, कि कंपनी इस्तमरारी बंदोबस्त और प्रांतोंमें बढ़ाना नहीं चाहती थी। उत्तर भारतमें उसने पहले लगान सैकड़ा पीछे ८३ भाग मालगुजारी लगाई, फिर उसे ७५ प्रति सैकड़ा और फिर ६३ प्रति सैकड़ा घटाया। यह भी जब ठीक न ठहरा तब संवत् १६१२में उसे लगानका आधा कर दिया। संवत् १६२१में यही लगानकी आधी मालगुजारीका हिसाब दक्षिण भारत पर भी लगा दिया गया। संसारके किसी सभ्य देशमें खेतीके मुनाफेके ऊपर आधों-आध आय करका लगाना आज तक सुना नहीं गया। पर इतने पर भी संतोष होता, तो भी बड़ी बात थी।

संवत् १६१५में कंपनीका राज समाप्त होगया। पार्लमेंटके अधिकारमें आजाने पर भी भारतको लेनेके देने ही पड़े। पार्लमेंटने कंपनीके हाथोंसे भारतकी जागीरको खरीद कर अपने हाथमें कर लिया और इसी जागीरके मत्थे ऋण लेकर कंपनीका देना चुका दिया। कंपनीने जो टोटा उठाया था, वह भी भारतके मत्थे मंदा गया। साल-साल भारत हीके मत्थे सूद भी चढ़ने लगा। लड़ाई चाहे संसारमें अंग्रेजोंको कहीं भी लड़नी पड़ी तो किसी-न-किसी तरह बादरायण संबंध जोड़कर उसका खर्च भी भारतकी ही जागीर पर लादा गया। रेलें निकलीं तो मुनाफा विलायत गया, और टोटा भारतीय जागीरको सहना पड़ा। इस तरह पार्लमेंटके राजने भारतकी जागीरको और भी अधिक निठुराईसे चूसना शुरू किया। भूमि और नमक इन दोनोंके ऊपर कड़ेसे कड़ा महसूल लगाने लगा।

संवत् १९३२में स्वर्गीय लार्ड सैलिसबरी भारत-मंत्री थे । उन्होंने उसी साल अपनी एक रिपोर्टमें इस प्रकार लिखा था—

“भारतीय राजस्व-पद्धतिके बदलनेकी जहां तक गुंजाइश है, वहां तक इस बातकी भारी ज़रूरत है, कि किसानको जितना देना पड़ता है उससे कुछ कम ही, कुल देशके राजस्वके नाते वह दिया करे । नीतिकी ही दृष्टिसे यह कोई किफायतकी नीति नहीं है कि राजस्वकी प्रायः सारी मात्रा उन देहातोंसे ही निकाली जाय, जहां पूंजी अत्यंत महंगी है, और उन शहरके हिस्सोंको छोड़ दिया जाय, जहां धन बेकार पड़ा हुआ है, और ऐशो-आराममें बर्बाद होता है । भारतके संबंधमें तो बड़ी हानि पहुंचाई जाती है, क्योंकि वहांसे मालगुजारीका इतना बड़ा अंश बदलेमें बिना कुछ मिले हुए देशके बाहर चला जाता है । जब भारतवर्षका लोहू बहाना ही है, तब नशतर उन हिस्सोंमें लगाना चाहिए जिनमें लोहू जमा हो, या कम से-कम काफी हो । उन अंगोंमें नहीं लगाना चाहिए, जो लोहू बिना दुबले और कमजोर हो चुके हैं ।”

लार्ड सैलिसबरीकी चेतावनी पर कोई ध्यान नहीं दिया गया । वही पुरानी कहानी बार-बार दोहराई जाती रही । हर बीसवें और तीसवें बरस बंदोबस्त होता रहता है, और हर नये बंदोबस्त पर मालगुजारी बढ़ती ही रहती है । कहनेको तो लगानकी आधी ही मालगुजारी ली जाती है, परंतु असलमें तो बंबई और मद्रासमें इससे तो बढ़ी ही रहती है । मालगुजारीमें और कई तरहके महसूल भी जोड़ दिए गए हैं, जिनको बढ़ानेमें सरकार-को तनिक भी संकोच नहीं होता । संसारमें कौन ऐसा देश है जिसके धनकी इस निठुराईसे चुंसायी हो, तब भी उसकी खेती बरबाद न हो जाय । भारतके किसान थोड़ेमें गुज़र करने-वाले होते हैं, परंतु तो भी वे दरिद्र हो गए हैं, खोखले हो गए हैं और सदा दुर्भिक्ष और भूखकी भयानक सूरत उनके द्वार पर खड़ी रहती है । श्री रमेशचंद्रदत्त लिखते हैं—

“घरके देनेके नामसे भारतकी सारी आमदनीका चौथाई हिस्सा हर साल इंगलिस्तान चला जाता है। और अगर उसके साथ वह धन भी जोड़ लिया जाय जो यहांके विलायती अफसर हर साल अपने वेतनसे बचाकर इंगलिस्तान भेजा करते हैं, तो यह रकम तीस करोड़से कहीं अधिक हो जाती है। संसारका सबसे बड़ा धनी देश संसारके सबसे दरिद्र देशसे यह धन चूसनेकी बेहयाई करता है। आदमी पीछे १२६०) साल कमानेवाले उन लोगोंसे आदमी पीछे ७) मांगते हैं, जो लोग आदमी पीछे ३०) साल कमाते हैं। यह सिर पीछे ७॥) रुपया जो भारतके लोगोंसे अंग्रेज लोग लेते हैं, भारतको दरिद्र कर देता है और इस तरह भारतमें अंग्रेजोंके व्यापारको भी हानि पहुंचती है। इस देनेसे अंग्रेजी व्यापार और व्यवसायको कोई लाभ नहीं पहुंचता, परंतु तो भी भारतके शरीरसे लगातार लोहूकी अटूट धारा बहती चली जाती है।”

यह बात बिल्कुल सच है। संवत् १६५७में भारतसे मालगुजारीकी सारी आमदनी सवा छब्बीस करोड़ रुपये हुई थी। घरके देनेके नामसे साढ़े पच्चीस करोड़ उसी साल विलायत भेजे गए थे। यह तो साफ जाहिर है, कि धरतीकी लगभग सारी आमदनी एक-न-एक ढंगसे विलायत चली जाती है। विलायती अफसर अपनी तनख्वाहकी बचत जो भेजते हैं, वह इससे अलग है। प्रजासे जो कर लिये जाते हैं, वह यदि देशमें ही खर्च किये जाते, जैसा कि संसारके सब देशोंमें होता है, तो वह रकम प्रजामें ही फैलती। पेशे, व्यवसाय और खेतीको बढ़ाती और किसी-न-किसी रूपमें प्रजाका ही धन बढ़ाती। देशके बाहर निकल जाने पर एक कौड़ी भी देशके काममें नहीं आती।

रानी विक्टोरियाका राज ६४ वर्षके लगभग चला। इतने समयमें भारतवर्ष पर अंग्रेजोंका फौलादी पंजा बराबर जकड़ता गया। महसूल बढ़ते गए। करोंका भार अंतमें देशकी दरिद्र-प्रजाके ही सिर पर पड़ता गया। नमकका महसूल दरिद्रोंको अत्यंत

ख़ा, परंतु उसे बढ़ानेमें हृदय-हीन विदेशी सरकारको कभी तरस न आया। विदेशी मालने बाजारको भर दिया। देशके आदमियोंको दस्तकारी और कारीगराका काम छिन गया। खेतीसे बची हुई बड़ियोंमें किसान खदर संबंधी काम किया करते थे। वह सारा काम छिन गया। सालमें ६ महीनेसे लेकर ३ महीने तक किसान बिलकुल बेकार रहने लगे। पछाहीं रोजगारकी कठिन चढ़ा-ऊपरीने यहांके एक रोजगारके बाद दूसरे रोजगारको चौपट कर दिया। कच्ची धातुओंसे पक्की धातु बनाना, खानोंकी खुदाई, लोहे आदिकी ढलाईके काम बंद होगए। नमक बनाने-वाली एक जाति नोनिया थी, जिनका काम नमक और शोरा तैयार करना था। यह जाति तो बिलकुल बे-रोजगार होगई। नोनिये कभी-कभी कुआं खोदनेका काम करते हैं। अधिकांश लोग मोटी मजूरी करने लगे। कोष्ठी, बुनकर, कोरी, जुलाहोंका रोजगार मारा गया। बढ़ई, लुहार आदि शिल्पी अपनी ऊंची कला भूल गए। सूत कातनेको अत्यंत प्राचीन कला इस कठिन चढ़ा-ऊपरीसे नष्ट होगई। लोगोंने चरखे उठाकर घरों पर फेंक दिए, मचानों पर डाल दिए, या लकड़ीकी जगह चूल्होंमें लगा दिए। लाखोंकी गिनतीमें बुनकर आदि कारीगर जब बेकार होगए, तो उनका जहां सींग समाया वहीं चले गये। जिनसे हो सका, खेती करने लगे, अनेक मोटी मजदूरीसे ही पेट पालने लगे। गुजरातके हजारों बुनकर भंगीका काम करने लगे। हथियार बारूद आदि-का बनाना एकदम बंद होगया। इधर पैसे इतने सस्ते कर दिए गए कि जरूरतकी सारी चीजें अत्यंत मंहगो हों चलीं।

२. पैसे की माया

पैसोंके भावकी कमी-बेशी करके विक्टोरियाके राजके पिछले २५ वर्षोंमें भारतकी विदेशी सरकारने शकुनीका कुटिल और निर्दय खेल खेला। भारतकी दरिद्र और मोहग्रस्त जनता

इस कुटिलाईको वैसे समझ सकती थी । समझती भी तो कर क्या सकती थी; सरकार बारंबार नया बंदोबस्त करके माल-गुजारी बराबर बढ़ाती गई और किसानोंको लाचार होकर ज्यादा-ज्यादा पैसा देना पड़ने लगा । पहले उसको थोड़ा पैसा जुटानेके लिए बहुत अनाज देना पड़ता था, यह उसे खलता था । सरकार-ने पैसेका अधिक प्रचार करके एक निशानेसे दो शिकार मारे । एक तो अपनी-अपनी आमदनी बढ़ाई, और दूसरे किसानोंमें जो असंतोष फैलता उसपर पर्दा डाला । किसान पैसे की मायामें फांसे गए । अंग्रेजोंने पैसेको कुछ थोड़ा सस्ता कर दिया । किसानोंने देखा कि पैसा बहुत सस्ता हो रहा है, अनाज दे-दे, लगे पैसा जुटाने । जब पैसे इकट्ठे होने लगे तब महीन और चमक दमकवाले कपड़े, खिलौने, लम्प, लालटेन तसवीरें, इत्र, सुगंध, फुलेल और भांति-भांतिकी विदेशोंकी बनी शौकीनी चीजें उन्हीं पैसोंके बलपर खरीदने लगे, और दरिद्र किसान शौकीन रईसोंकी नकल करनेमें अपनी बड़ाई मानने लगे । जो शहरके बच्चे रूखी रोटी और नमक कलेवा करते थे, और नंगे पांव-लंगोटी बांधे पढ़ने या काम करने जाने में संकोच नहीं करते थे, वही मांग काढ़ने, बाल संवारने, फैशन बनाने और रईसों की-सी लंबी ढीली धोती बांधने लगे । यह सब शौकीनीकी चीजें बिलायती चल गई, जो अनाजसे नहीं मिलती थीं । इनके लिए पैसोंकी बहुत जरूरत पड़ी । फिर शादी, ब्याह, मूड़न छेदनकी तरह गिरस्तीमें आए दिन हौसले बढ़ने लगे, चढ़ा-ऊपरी होने लगी । बेकार खर्चा बढ़ गया । अब हरेकको पैसेकी लत लग गई । अनाज देकर अब सौदा मिलना मुश्किल हो गया । सुई, डोरा, नमक, हल्दी, सूत, रूई सब तरहकी जरूरी चीजें जो अनाज देकर मिलती थीं, पैसे पर मिलने लगीं ।

मुसलमानोंके राजमें किसान जो चाहता था, मालगुजारीमें

दे सकता था, चाहे अनाज दे, चाहे रुपया। विदेशी सरकारने देखा कि अनाज लेनेमें झंझट है, और जब पैदावार मारी जायगी तब तो घाटेमें रहेंगे। इसलिए मालगुजारीमें अनाज लेनेकी रीति उठा दी गई। फिर भी जमींदार असामियोंसे अक्सर लगानमें अनाजका अंश ले लिया करते थे। सरकारकी नीतिसे यह भी चलने न पाया। जब जमींदारोंसे मालगुजारीके रुपये लिये जाने लगे, तो उन्हें भी अनाजके बदले रुपया लेनेमें सुभीता पड़ा। मालगुजारी और लगानकी दरें ठहराई गई। और ठहराई हुई रकम किरातोंमें वसूलकी जाने लगी। अब जमींदार या राजाका महसूल अनाजकी पैदावार पर नहीं रहा। खेतमें अनाज उपजे, चाहे न उपजे, पर राजा और जमींदार अपना महसूल बिना लिये नहीं रहते। किसान चाहे भूखों मर जाय, पर उसे लगानकी रकम देनी होती थी। इसमें पैसे वालोंकी और भी बन आई थी। साहूकारोंने टका रुपया और आना रुपया व्याज लगाकर किसानोंको चूसना शुरू कर दिया। किसानोंको कर्ज लेनेकी बान पड़ गई, और एक बार किसानने कर्ज लिया; समझो कि खड़ा लुट गया। क्योंकि एक तो इतना भारी व्याज ही देना पड़ता था, दूसरे व्याज-पर-व्याज लगाया जाता था। किसानकी खेती-बारी धीरे-धीरे साहूकारीके पास चली गई। इस तरह देशमें जमींदार और साहूकार तो बसे और किसान उजड़ गए। कलकत्ता, बंबई, करांची, हैदराबाद, मद्रास, लाहौर, अहमदाबाद, इंदौर, आदि बड़े-बड़े शहरोंमें उजड़े हुए किसान कुलीगीरी करने लगे, और लाखों इसी तरहके बे-खेत और बे-घरके मर्द औरत गिरमिटकी गुलामी करनेके लिए मिरिचके देश, ट्रिनीडाड, फीजी आदि विदेशी टापुओंमें चले गये। किसानोंकी सिधार्ह और भोलेपनके कारण आरकाटियोंको उनके बहकानेमें बड़ी आसानी हुई। आरकाटी गांवमें आया और किसानका बड़ा हितैषी बनकर रहने

लगा। दुखी किसानोंके जिनके खेत साहूकारोंकी ठगीके कारण चले गये थे, उसने बहकाना शुरू किया “तुम हमारे साथ कलकत्ते चलो, हम तुम्हें ३) रु० रोजकी मजदूरी दिला देंगे, मजेमें खाना और बचाना, और रुपये जमा करके अपने खेत छुड़ा लेना। कुछ दिनोंमें तो तुम जमींदारी खरीद लोगे। यहां क्यों अपनी मिट्टी खराब करते हो। कलकत्ते जानेको खर्च नहीं है, तो किराया हम दिलवा देंगे। नौकरी चाकरी खर्च-बर्च हम सब कुछ दिलवा देंगे। मौज काटो।” आरकाटीने पैसोंका जो जाल बिछाया, उसमें रोटियोंको तरसनेवाला किसान फंस गया। कलकत्ते जाकर गिरमिट लिखाकर सदाके लिए गुलाम बन गया। इन बेचारे किसानोंमेंसे अपने जीवनमें हजारोंमेसे कोई एक मुश्किलसे जीते जी फिर अपनी मातृ-भूमिके दर्शनोंके लिए लौट सका।

वे लौटे क्यों नहीं? इसीलिए कि वे पैसेके मायाजालमें बेतरह फंस गए। पच्छाहीं सभ्यतावाले देशोंमें पैसा रुपया बहुत सस्ता है। खाने-पीने पहिरनेकी चीजें बहुत मंहगी हैं। और कोई बाहरी लूटनेवाला नहीं है, क्योंकि वहांके लोग आप ही कल-बलसे जगतको लूटते रहते हैं। इसीसे वे धनवान हैं। वे तीन-तीन रुपये रोज मजूरी भी देते हैं। हमारे दरिद्र किसान उनके यहां मजूरी करने लगे तो उन्हींकी तरह खाने-पीने भी लगे। अपने देशमें जैसा खाते थे उसमें मान लो कि चारों आने भी खर्च होजाते थे तो भी चार आने रोजकी मजूरी करनेवाला कारीगर घाटेमें नहीं रहता था, क्योंकि उसका अपने घर-का-घर होता था, खेती-बाड़ी भी होती ही थी। परंतु वहांके तीन रुपये यहांके चार आनेसे ज्यादा कीमत नहीं रखते, क्योंकि वहां पैसा सस्ता है और सब चीजें मंहगी हैं। वहांके असुरोंकी बुरी लतें भी लग जाती हैं। तीन रुपयेमें दो-ढाई रुपये रोज तो खर्च ही हो जाते हैं, बचता बहुत कम है। फिर जब वह गुलामीसे कूटता है

तो जो कुछ बचाया होता है वह इतना ज्यादा नहीं है कि आने-जानेका भारी खर्चा सहकर भी इतना बच जाय कि अपने लिए भारतमें खेत खरीद ले। वह अभाग इस देशमें किस बिरते पर लौटेगा ? यहां विदेशी सरकारने पैसोंका जो मायाजाल बिछाया उसमें फंसाकर जमींदारने किसानको चूसा, साहूकारने किसानको चूसा और जब उसमें खून नहीं रह गया, जब वह बिलकुल बे-घर द्वार होकर बरबाद होगया, तब उसकी बची हुई भूखी हाड़की ठठरीको आरकाटीने रेलका किराया और भोजन देकर मोल ले लिया। अपने भाईको पैसे लेकर राक्षसोंके हाथ बेच दिया। यह सब कुछ विदेशी लुटेरोंके लिए किया गया। जानकर नहीं अनजानमें, और पैसोंके माया-मोहमें फंसकर। जिसके खेती-बारी, जगह-जमीन नहीं रह गई, और रगोंमें खून भी नहीं रहा, वह बेचारा इस देशमें रहकर सूखी ठठरीमें प्राणोंको किस सहारे रखता।

यह तो कथा हुई सबसे नीची श्रेणीके लोगोंकी जो खेती भी करते थे, और मजूरी भी करते थे। जो उनसे अच्छे थे और भूखों नहीं मरते थे, वे भी पैसोंके मायाजालमें फंसकर बरबाद हुए। ये लोग अपनेको ऊंची जातिके समझते थे। इनकी मोटी समझमें भी जो ज्यादा खर्च करे वही बड़ा इज्जतदार समझा जाता। इसीलिए यह अपनेको समाजमें ज्यादा इज्जतदार सिद्ध करते रहे। इसमें उन्हें रुपयोंकी जरूरत पड़ा करती थी। राली ब्रदर्सके एजेंट फसल तैयार होनेके पहलेसे ही घूमा करते थे। राली ब्रदर्स विलायतका एक भारी व्यापारी है। जो लाखों मन अनाज भारतसे खींच ले जाता है। इसके कारिंदे रुपया लेकर गांव-गांव घूमते हैं; खड़ी फसल कूत करके खरीद लेते हैं। या नाजका भाव पहलेसे ठहराकर किसानको पहले रुपया दे देते हैं, और सस्ता अनाज और रुपयेका सूद किसानसे वसूल कर लेते

हैं। पैसोंकी मायामें पड़कर किसान अपने खानेके लिए काफी अनाज तक नहीं रखते। यह देखकर कि रुपया ज्यादा मिलेगा, भूखों मरकर भी अन्न बेच डालते हैं। यह खूब जानते हैं कि पैसोंसे पेट नहीं भरता, फिर भी पैसों पर लट्टू हो रहे हैं।

हमारे देशमें पैसोंकी मायामें फंसकर बे-जरूरी चीजोंकी खेती अगर न की जाती और पहलेकी तरह अनाज और कपास-का ही अधिकार खेतों पर रहता तो भी हमारी दरिद्रता इतनी अधिक न होती। हमारे किसान पैसोंकी मायामें फंसकर विदेशी सरकारसे दादनी लेने लगे, और खेतोंसे जहां अमृत उपजाते थे, जहर बोने और उपजाने लगे। पोस्तकी खेती करके अफीम बेचने लगे, तंबाकूकी खेती करके देशमें जहर फैलानेका उपाय करने लगे। तंबाकू और अफीमने किसानोंको मोहमें फंसाकर कहींका न रक्खा। ताड़ीसे, शराबसे, गांजा, भंग, चरस आदि जितनी नशीली चीज हैं, सबसे विदेशी सरकारको आमदनी होने लगी। इसलिए इन सब चीजोंका प्रचार किया गया, और किसान लोग पैसेकी मायामें फंसकर उस महापातकके काममें भी पैसा-पूजकोंकी मदद करने लगे। पैसेकी मायाने किसानको बरबाद कर डाला।

पैसेकी माया अपार है। पैसा अंग्रेजों का देवता है, असुरोंका परमात्मा है। उसकी मायामें जिसे देखो वही फंसा हुआ है। किसानका तो सारा रोजगार पैसेने छीन लिया है। बारीक, चिकना, चमकीला, सस्ता मलमल देखकर किसान लट्टू होगया। मोटा खहर उसके बदनमें चुभने लगा। कारिंदेने ज्यादा पैसे देकर कपासकी फसल खरीद ली। उसने भी खुशीसे बेच दिया। सोचा कि “इन्ही पैसोंसे महीन मलमल खरीद लूंगा। ओटने, धुनने, कातने बुननेकी मेहनतसे बच जाऊंगा। और इन्हीसे महीन कपड़ा भी मिल जायगा। मेरे घरकी औरतें बारीक सूत

नहीं काततीं ।” इस तरह जो पैसा विलायतने अनाज और कपासके लिए किसानको दिया था, वही पैसा बारीक कपड़ा पहनाकर फिर लौटा लिया । देखो पैसेकी मायामें डालकर किसानको कैसा बेवकूफ बनाया । किसानके घरमें दरिद्रताका वास होगया । चरखा, चक्की और रईका चलना बंद हो गया । चीनीका रोजगार, पटसन, सन, सूत, ऊनकी कताई-बुनाईका रोजगार उसके हाथसे छिन गया । देशके लाखों बुनकर, कोली जुलाहे बेरोजगार होगए । जब कोई रोजगार न रहा, लाचार हो, कुली, भंगी, डोम आदिका काम करने लगे या विदेश चले गए । जिन लोगोंको खेत मिल सके वे खेती करने लगे, या खेती मजूरी दोनों करने लगे । इस तरह खेती करनेवाले बहुत बढ़ गए, और उनके पेटका भी बोझा खेतीके ही कंधों पर आपड़ा ।

अब खेतकी जमीन बढ़ानी पड़ी । वह कहाँसे आये ? गांवोंकी गोचर-भूमि जो गऊ-बैलोंके लिए छूटी रहती थी वह खेतीके काममें आने लगी । बेचारी गउओंको उनकी मिल्कियतसे निकाल बाहर किया गया । पैसोंकी मायाने उनकी रोजी छीनकर भी उन्हें कुशलसे न रहने दिया । उनकी जानके लिए बड़ी-बड़ी कीमत लगने लगी । जीती गऊका कम दाम मिलने लगा, पर उसकी लाश पर ज्यादा पैसे मिलने लगे । जीती गऊका दाम १०) था, तो उसके चमड़ेका दाम १३) मिलने लगा । और मारी हुईका मांस और उसकी हड्डीका दाम अलग खड़ा होने लगा । पैसेकी मायामें फंसकर किसानने अपना तन बेच दिया, घर-द्वार बेच दिया, अब उसने अपनी गऊ-माताको भी बेचकर नरकका रास्ता साफ कर लिया । गोरी सेनाको खिलानेके लिए हजारों गायें इसी तरह खरीद-खरीद कर काटी जाने लगीं । पैसेकी मायाने न गोचर-भूमि रहने दी और न गोचर-भूमिके भोगनेवालोंको जीता छोड़ा । दही, दूध, घी पहले खास खानेकी चीजें थी । यह आज

अमीरोंको भी जितना चाहिए उतना नसीब नहीं। पैसेकी माया हमारे सामनेकी परसी थाली छीन ले गई। बच्चोंके मुंहसे दूधकी प्याली हटा ले गई। और नकली घी, रेशम, चीनी, आटा, आदि सभी चीजें उसने फैलाईं। उसने हमें हड्डी, चरबी, मांस खिला और चबवा कर छोड़ा। एड़ीसे चोटी तक हमें हिंसाका अवतार ही नहीं बल्कि भूखा, नंगा राक्षस बना डाला।

हिंसाब करनेवालोंने पता लगाया है, कि इन्हीं पैसोंकी मायामें फंसकर आज किसानके सिर पर सात-आठ अरब रुपयोंका कर्जा है। जबतक किसान इस भयानक कर्जेके बोझसे पिस रहा है, तबतक गांवका सुधार क्या होगा। जबतक ग्यारह करोड़ किसान सालमें नौसे तीन महीने तक बेरोजगार रहेंगे, जबतक हमारा अन्न दूसरे खाते रहेंगे, और हम मुंह ताकते रहेंगे, जबतक हम अपने तन ठकनेके लिए मंचेस्टरके मुहताज रहेंगे, जबतक गोरोंका पेट भरनेके लिए हमारा गोधन बरबाद होता रहेगा, जब तक हम ठंडे रहेंगे और हमारे हृदयोंमें अपनेको पच्छाहीं सभ्यताकी गुलामी और पैसोंके मायाजालसे छुटकारा पानेके लिए आग न लग जायगी, तबतक गांवोंका सुधार न होगा।

भारतमें जहां-जहां रैयतवारी ढंग है, वहां तो सरकारसे सीधा संबंध है। पर जहां-जहां जमींदारीकी चाल है वहां बीचमें जमींदारके पड़ जानेसे किसानके साथ जमींदारोंसे रगड़ा-भगड़ा लगा रहता है। आपसके भगड़े भी बटवारे हकीयत आदिके लिए लगे रहते हैं। आये दिन नोन सत्तू लेकर खेतीके उपजाऊ कारबारको छोड़कर, अपना लाख हरज करके, अपने भूखे बीबी-बच्चोंको बिलखते छोड़कर बेचारे किसानको बीसों कोसकी दौड़ लगानी पड़ती है। वकीलों मुख्तारोंके दरवाजों पर ठोकरें खानी पड़ती हैं। बेचारेको आधे पेट खानेको नहीं मिलता, पर वकीलों मुख्तारों, अहलमदों, पेशकारों और अदालतके अमलोंको। और अनगिनत

ऐसे ही रिश्वतखोरोंको, कर्ज लेकर, खनाखन रुपये गिनने पड़ते हैं। नालिश करते ही रसूम तलबाना वगैराके लिए खर्च करना पड़ता है, और अंतमें फल यह होता है, कि हारनेवाले और जीतनेवाले दोनोंके दोनों कर्जेसे लद जाते हैं, और जायज और नाजायज खर्च दोनों मिलाकर मुकदमा जीतनेवाला भी घाटेमें ही रहता है। पुराने जमानेकी पंचायतें इसीलिए उठ गईं कि उनके अधिकार विदेशी सरकारने छीन लिए और देहातोंके कोने-कोने तक अपना अख्तियार फैलानेके लिए गांववालोंको कचहरीके अर्थात् मूड़नेवालोंके मातहत कर दिया।

इसी तरह मिलों और कारखानोंमें जहां मजूरों और मालिकोंका संबंध है, वहां भी पैसेकी माया अजब खेल खिला रही है। पैसा सस्ता होजानेसे सारी चीजें महंगी तो हो गईं, पर मजूरी उसी हिसाबसे नहीं बढ़ी। हम यह बात और जगह दिखा आए हैं। पैसेकी मायाके कूटनेवाले बैलटके नीचे दरिद्र मजूर और किसान कंकड़ और पत्थरके टुकड़ोंकी तरह पिस गए। और पैसेके पुजारियोंकी ठंडी सड़क बन गई।

अभी कुछ ही बरस हुए कि ब्रिटिश सरकारकी ओरसे पंचायतें बननेके लिए कानून बना, परंतु इन पंचायतोंमें वह बात कहां है, जो पुरानी पंचायतोंमें थी। पंचायतोंके प्रकरणमें हम देखेंगे, कि पहले कैसी पंचायतें होती थीं, आज ब्रिटिश सरकारने जो पंचायत बनाई हैं वे कैसी हैं, और जैसी पंचायतोंसे हमारे देशका कल्याण हो सकता है, वैसी पंचायतें कैसे कायम हो सकती हैं।

३. आज कैसी दशा है ?

महारानी विक्टोरियाके राजमें भारतकी जितनी दुर्दशा हो चुकी थी, वह यूरोपके महासमर तक बढ़ती ही गई थी, और युद्धके बाद तो वह इस हद तक पहुंच गई कि, भारतके अत्यंत

शांत, अत्यंत सहनशील, और अहिंसाके भक्त, भिक्षा मांगने तक के विनयी भारतवासी अत्याचारोंसे इतने व्याकुल हो गए कि उन्होंने स्वतंत्रताका शांत निरस्त्र युद्ध आरंभ कर दिया। विदेशी सरकार मुद्दतसे इस बातको समझती थी कि जितने भारी अत्याचारोंको भारतवासी चुपचाप सह रहे हैं, उनको संसारकी सभ्यताके इतिहासमें किसी भी देशने बर्दास्त नहीं किया है। इसी अपडरसे संवत् १६१४ के असफल भारतीय युद्धके कुछ बरसों बाद ही सारे ब्रिटिश भारतके हथियार कानून बनाकर अपने कब्जेमें कर लिए। एक तरहसे सारे देशको निहत्था कर दिया, और पासपोर्टके कानूनसे भारतके अंदर बाहरसे आना या भारतसे बाहरको जाना अपने कब्जेमें कर रक्खा है।

भारतवर्ष एक बहुत भारी किला है, जिसके भीतर अंग्रेज नव्वाबोंकी जागीर हैं, जहां करोड़पतिसे लेकर मिगभंगेतक उनके कैदी हैं, इन कैदियोंकी कई श्रेणियां हैं, जिनमें पहिली श्रेणीमें बड़ी-बड़ी रियासतोंके शासक महाराजा, राजा, नव्वाब, ताल्लुकेदार और भारी-भारी उपाधियोंवाले जमींदार आदि हैं। उसके बाद बीचकी श्रेणीके लोग हैं। परन्तु इन दोनोंकी गिनती बहुत थोड़ी है। सैकड़ा पीछे निन्यानबे वे दरिद्र कैदी हैं, जिन्हें इज्जतके लिए मजदूर और किसान कहते हैं। उन बेचारोंको भर-पेट मिट्टी मिली हुई वे रोटियां और कीचड़-सी वह दाल और घासका वह झलरा भी भरपेट नसीब नहीं होता, जो इस बड़ी जागीरके मालिक लोग डाकुओं, चोरों, हत्यारों, लठबाजों और अत्याचारी गुंडोंको इस किलेके भीतरकी जेलोंमें खुशीसे देते हैं। क्या संसारमें ऐसी दुर्दशा किसी सभ्य देशकी सुनी गई है ?

इस संसारके अनुपम और विशाल किलेके भीतर, इन कैदियोंकी जो दशा है, अगर उसका पूरा और सच्चा चित्र इन्हीं कैदियोंके सामने रक्खा जाय और उन्हें उनके कष्टोंकी गंभीरताका पूरा ज्ञान

करा दिया जाय तो शायद उसका फल अत्यंत भयंकर हो, जिसका अनुमान करना बड़ा कठिन है। भूल और अज्ञान ऐसे मौकोंपर बहुत बड़ी चीज है, उससे लाभ भी है, और हानि भी। भूल और अज्ञानकी बेहोशीमें भारतवर्षको नशतर-पर-नशतर लगते जाते हैं, खूनका चूसा जाना लार्ड सैलिस्बरीकी रायके विरुद्ध अंधाधुंध जारी है। इस बेहोशीको कायम रखनेके लिए भारतके रहनेवाले सौमें चौरानबे आदमियोंको सब तरहकी शिक्षासे विदेशी सरकारने अलग रक्खा है, और कहा यह जाता है कि आम तालीम पहले कभी दी ही नहीं जाती थी। पहलेके किसान खेतीके काममें जितने होशियार थे उसकी गवाहीमें पुराने विदेशी लेखक लाख-लाख मुंहसे सराहना करते थे। परंतु गिरमिटकी गुलामीने हमारे यहांसे कुछ तो खेतीकी कलामें कुशल मजूरों और किसानोंको विदेशोंमें भेज दिया, और अधिकांश भारी लगान कर्ज आदिके बोझसे लदकर उजड़ गए। नये ढंगकी मुकदमेबाजीमें फंस-फंस कर मर-खप गए, और महामारी हैजा आदि दुर्भिक्षके रोग उन्हें उठा ले गए। अकाल बारंबार पड़ने लगे, और इतनी जल्दी-जल्दी पड़े कि भारतवर्षमें आज अकाल सदाके लिए ठहर गया है। इन सब बातोंने भारतके किसानोंकी खेतीकी कलाको चौपट कर दिया। जब बेटेको सिखानेका समय आया, बाप चल बसा। भाई-भाईमें मुकदमेबाजी हुई, बंटवारेमें चार-चार पक्के बीघे खेत लेकर अलग हो गए। अब हर भाईको अपना-अपना हल-बैल अलग रखना पड़ा। उधर मुकदमेबाजीने घरकी संपत्तिको स्वाहा कर दिया, इधर साहूकारके दियेहुए ऋणने व्याज और सूद-पर-सूद मिलाकर सुरसाकी तरह अपना मुंह बढ़ाया, और अंतमें रहे-सहे वह चार बीघे मय हल-बैलके निगल गया। घर-घर किसानोंके यहां यही कहानी आज तक दोहराई जा रही है। गांवोंका उजड़ना आज तक जारी है।

आज भारतवर्षमें बच्चोंकी मौतें जितनी ज्यादा होती हैं, संसारमें कहीं नहीं होती। दरिद्रताके कारण मां-बाप न तो बच्चोंको दूध दे सकते हैं और न उनके पालन-पोषणकी ओर ध्यान देते हैं। बच्चोंके होते समय न तो किसी तरहकी सहायता पा सकते हैं और न सफाई रख सकते हैं। सफाई और तंदुरुस्ती भी कुछ अंश तक धनके सहारे ही होती है। इसीलिए दरिद्रता और दुर्भिक्षने पहले रास्ता साफ करके रोगोंके खेमे खड़े किये, और जब मौतका पड़ाव बन गया तो यमराजने आकर डेरे डाले। आज भारतवासियोंकी औसत उम्र २८ बरसकी हो गई है। जितने आदमी भारतवर्षमें मरते हैं, उतने संसारमें और कहीं नहीं मरते। और देशोंकी हुकूमतें अपनी आबादी बढ़ानेकी चिन्तामें रहती हैं, सुख-समृद्धि बढ़ाती रहती हैं, और इन बातोंके लिए जरूरत पड़ती है, तो खूनकी नदियां बह जाती हैं। यहांकी हुकूमत भी खूनकी नदियां बहाती है, परंतु खून होता है भारतवासियोंका, और नदियां बहकर विलायतके सुख-समृद्धिको सींचती हैं, और बढ़ाती हैं। इस किलेके महाप्रभुओंकी यह मंशा नहीं है, कि कैदियोंकी ठठरियोंमें जो खून बने, वह उनके पास रह जाय। मांचेस्टरवालोंको तो शायद इस बातमें खुशी होगी कि भारतमें मौतें ज्यादा होती हैं, और कफनकी बिक्री अच्छी होती है।

हाथ-पैरके मजबूत और खेतीके काममें कुशल किसान जब देशसे एक बार उजड़ जाते हैं, तो देशके संभाजनेमें युगोंका समय लग जाता है। भारतवर्षकी उजड़ी खेतीको फिर पहलेकी तरह अच्छी दशामें लानेके लिए अबसे सैंकड़ों बरस लगेंगे, शतें यह है कि सुधारके काममें भारतके लोग प्राणपणसे लग जायें। विदेशो सरकार हमारी उन्नतिके लिए अपनेको बहुत चिंतित प्रकट करती है परंतु यह दंभ-मात्र है। उसे वस्तुतः चिन्ता यह रहती है कि पैदावार घटकर हमारी आमदनीको न घटा दे।

आज भारतवर्षमें बेकारीका डंका बज रहा है । यह बात जगजाहिर है कि खेतीमें कहीं भी बारहों मासके लिए किसान या मजूरको काम नहीं मिल सकता । बंगालके फरीदपुर जिलेको भारतवर्षमें आदर्श समृद्ध जिला बताते हुए जैक नामक एक सिविलियन लिखता है कि यहांका किसान तीन महीनेकी कड़ी मेहनतके बाद नौ महीने बिलकुल बेकारीमें बिताता है । “अगर वह धानके सिवाय पटसन भी उपजाता है तो जुलाई और अगस्तके महीनोंमें उसे छः हफ्तेका काम और रहता है।”^१ इस तरह कम-से-कम साढ़े सात महीने बंगालके किसान बेकार रहते हैं । श्री कैलवर्टका^२ कहना है कि पंजाबके किसान ३६५ दिनोंमें अधिक-से-अधिक १५० दिन पूरी मेहनत करते हैं । बाकी सात महीने बेकार रहते हैं । संयुक्तप्रांतके लिए श्री इडार्डका बयान है कि दो बार बोवाई, दो फसलोंकी कटाई, बरसातमें-कभी-कभी निराई और जाड़ोंमें तीन बार मिंचाई—किसानके लिए कड़ी मेहनतका काम इतना ही है—बाकी साल भर किसान बिलकुल बेकार रहता है । बिहार और उड़ीसाके लिए श्री टाल्लेंट्स और मध्यप्रांतके लिए श्री राउटन भी ऐसा ही कहते हैं । श्री गिलबर्ट स्लेटरका कहना है कि मद्रास प्रांतमें जहां एक फसल होती है वहां किसानको केवल पांच महीने काम करना पड़ता है और जहां दो फसल होती हैं वहां कुल ८ महीने । इस तरह कम-से-कम चार महीने किसानको दक्षिण देशमें बेकार रहना पड़ता है ।^३ इस तरह भारतवर्ष भरमें कम-से-

1. J. C. Jack : The Economic life of a Bengal District, Oxford, 1916, PP. 39.

2. Calvert's Wealth Welfare of the Punjab. PP. 245

3. Prof. Gilbert Stater : Some South Indian Villages—Oxford University Press, London p. 16., and Census Reports PP. 270, 271 and 274, for Bihar & Orissa, U. P., and C. P. respectively.

कम चार महीनेसे लेकर नौ महीने तक किसान बिलकुल बेकार रहता है। श्री ग्रेगने भारतके पक्षको अत्यंत दबाकर औसत बेकारी कम-से-कम तीन महीने रखी है। अपने ही पक्षमें अटकलकी ऐसी कड़ाई वर्तमान लेखक अन्याय समझता है। यह औसत साढ़े छः महीने होता है। परंतु समीक्षाकी कड़ाई और हिसाबके सुभीतेके लिए हम इसे छः महीना रखते हैं।

भारतवर्षकी खेती पर निर्भर करनेवाली आबादी सैकड़ों पीछे ७५के लगभग है। इसमें भी जो लोग खेतों पर मेहनतका काम करते हैं उनकी गिनती लगभग पौने ग्यारह करोड़ है। हम बिना किसी अत्युक्तिके यह कह सकते हैं कि यही पौने ग्यारह करोड़ आदमी औसत छः महीने बिलकुल बेकार रहते हैं। कड़े अकालके दिनोंमें विदेशी सरकार सहायताके रूपमें भारतके भुखड़ोंसे कसकर काम लेती है और दो आने रोज मजूरी देती है। हिसाबके सुभीतेके लिए हम पौने ग्यारह करोड़की जगह दस ही करोड़ लें और केवल एकसौ अस्सी दिनोंकी मजूरी दो आने रोजके हिसाबसे रखें तो आदमी पीछे साढ़े बाईस रुपये होते हैं। छः महीनेमें दस करोड़ आदमियोंकी मजूरीके इस हिसाबसे सवा दो अरब रुपये होते हैं, या सवा करोड़ रुपया रोजाना होता है। इन पौने ग्यारह करोड़ मनुष्य-रूपों मशीनोंको बेकार रखकर विदेशी सरकार सवा करोड़ रुपये रोज और सवा दो अरब रुपये सालानेका घाटा कराती है। अगर इसे बेकारीका टैक्स समझा जाय, तो भारतवर्षको इस भयानक बेकारीके पीछे सिर पीछे सात रुपयेके लगभग खोना पड़ता है। जिस आदमीकी आमदनी सालमें छत्तीस रुपये हों, वह क्या सात रुपये या अपनी आमदनीका पंचमांश खो देना सह सकेगा ?

संवत् १९७८की मालगुजारीकी रकम जो सरकारने वसूल की, सवा अरबसे कुछ अधिक थी। भारतकी सारी आमदनी

संवत् १६८१की एक अरब अड़तीस करोड़के ऊपर थी । भारत सरकारका कुल खर्च जो उस साल हुआ, एक अरब साढ़े बत्तीस करोड़से कम था । यही मर्दें विदेशी सरकारकी आमदनी और खर्चकी मदोंमें सबसे बड़ी है । बेकारीके कारण भारतवर्षको जितना हर साल खोना पड़ता है, वह इनमें बड़ी-से-बड़ी मदका पौने दो गुनेसे ज्यादा है । यह तो किसानोंकी मजूरीकी रकमका हिसाब रक्खा गया, परंतु यही मजूर लोग काम करके जो माल तैयार करते हैं, वह उनकी मजूरीसे कई गुना ज्यादा कीमतका होता है । तैयार मालकी कीमत अगर मजदूरीकी दूनी भी लगाई जाय तो पौने सात अरब सालानाका घाटा होता है । हर साल पौने सात अरबका घाटा उठानेवाले किसान अगर कुल आठ ही अरबके कर्जदार हों तो यह कर्जा कुछ ज्यादा नहीं है । परंतु जैसे संसारके किसी सभ्य देशके किसान अपनी जिंदगीके आधे दिन न तो इस तरह बेकार खोते हैं, और न कई करोड़की संख्यामें पेट पर पथर बांधकर सो रहते हैं, और न इस तरह भयानक रूपसे ऋणासुरके डाढ़ोंके बीच पिस रहे हैं ।

इस भयंकर बेकारीका भयानक परिणाम भी देखनेमें आरहा है । खाली दिमागमें शैतान काम करता है । जिन लोगोंको कोई काम नहीं है वे ज्यादातर हुक्का पीते हैं और तमाखू फूंक डालते हैं । तमाखूका जहर हमारे समाजके अंगके रोयें-रोयेंमें फैल गया है । तमाखू आदर-सत्कारकी चीज बन गई है । जो तमाखू खूनको खराब कर देता है, हृदय और आंतोंको बिगाड़ देता है, आंखकी रोशनीको खराब कर देता है, अच्छे खासे मर्दको नामर्द बना देता है, क्षय रोग पैदा करता है, और आदमीके जीवनको घटा देता है, उसी जहरकी खेती कमाई करनेके लिए नहीं तो अपना नाश करनेके लिए किसान करता ही है । परंतु वह इस तरह पर केवल अपने तन-मनको ही नहीं खराब करता, बल्कि अपने देश-

के धनका भी नाश करता है । अगर हम मान लें, कि भारतके बत्तीस करोड़ प्राणियोंमें केवल आठ करोड़ प्राणी घेलेकी तमाखू रोज खाते, पीते, सूँघते और फूंकते हैं तो इस जहरके पीछे सवा छः लाख रुपये रोज फूंक देते हैं । सालमें तेईस करोड़के लगभग तमाखूमैं खर्चा कर देते हैं । ताड़ी और शराबकी आमदनीसे सरकार अंधाधुंध फायदा उठाती है, वह तो इसका खासा प्रचार करती है । रहे सहे किसान इन जहरोंके कारण उजड़ते जाते हैं । हमारे देशमें लगभग बारह लाख एकड़में तमाखूकी खेती होती है । “शैतानकी लकड़ी”के लेखकने तो अटकल लगाया है, कि पचास करोड़ रुपयेकी तमाखू हमारे देशमें खप जाती है । सन् १९२० ई०में सरकारको शराबसे बीस करोड़से ज्यादाकी आमदनी हुई । अफीमसे सन् १९१६-२०में सरकारको ढाई करोड़से अधिक आमदनी हुई । गांजा, भांग, चरस, चाय काफी आदि नशेकी चीजें भी बेकार किसानको तबाह कर रही हैं ।

यह भुक्खड़ जिन्हें आधा पेट खाना भी नहीं नसीब होता, नशा किसलिए सेवन करते हैं । भूखा आदमी पापी पेटको भरनेके लिए लाचार होकर ऐसे काम भी कर डालता है, जिनके करनेमें उसे शर्म आती है । जब वह होशमें रहता है तब भीतरवाला ऐसे कामोंके करनेमें रुकावट डालता है, परंतु शरीरका बाहरी काम कैसे चले । भुक्खड़ भीतरवालेकी आवाज सुनना नहीं चाहता, इसलिए नशेसे अपनेको बेहोश कर देता है । भूखे बाल-बच्चे कष्टसे तड़प रहे हैं, कमानेवाला बाप उनके मुंहमें अन्न नहीं रख सकता । जी तोड़कर मेहनत करता है, परंतु मजूरी काफी नहीं मिलती । घोर अकालके समयमें भी भारतमें काफी अन्न मौजूद रहता है, परंतु दरिद्र भुक्खड़के पास पैसे कहां है, कि मोल ले सके । वह बेचारा चिंताओंसे व्याकुल हो जाता है, तड़पते बाल-बच्चे देखे नहीं जा सकते, नशा उसे बेहोश कर देता है । इसी-

लिए वह किसी-न-किसी ढंगसे अपनेको बेहोश कर लेता है। पाप करनेके लिए जिस तरह आदमी नशा पीता है, पाप करानेके लिए भी उसी तरह दूसरोंको नशा पिलाता है। विदेशी सरकार अपने स्वार्थ-साधनके लिए इस विशाल किलेके कैदियोंको बेहोश रखनेके लिए भालि-भांतिसे नशा पिताती है। हमारे किसान नशे-के पीछे भी बेतरह बरबाद हो रहे हैं।

गायोंसे ज्यादा सीधा कोई पशु नहीं है, परंतु चारा थोड़ा हो, और गायें अधिक हों, तो वह भी आपसमें लड़ जायंगी। दरिद्रता-की जैसी विकट दशामें हमारा देश है वह तो प्रकट ही है। खानेको थोड़ा मिलता है, और बेकारी हृदसे ज्यादा है, तो उसका नतीजा भगड़ा-फसादके सिवा कुछ नहीं हो सकता। यही बात है कि कोई गांव ऐसा नहीं है, और किसी गांवमें एक घर भी ऐसा नहीं है, जिसमें भगड़ा-फसादका बाजार गर्म न हो, और जहां आये दिन लोगोंमें लड़बाजी न होती हो, और फौजदारी या दीवानीतक जानेकी नौबत न आती हो। गांवका पटवारी और चौकीदार और थानेके दारोगा, सिपाही हमेशा इसी फिक्कमें रहते हैं, कि कोई भगड़ा खड़ा हो और उनकी जेबें गर्म हों। भगड़ेमें भगड़ने-वालोंका नुकसान-ही-नुकसान रहता है। और अपनी शानमें ही कोरे रह जाते हैं, और सरकारी लोमड़ियां शिकारका वारा-न्यारा करती हैं। गांववालोंमें कचहरीकी दलालीका रोजगार दरिद्रोंकी इसी कफन-खसौटीने पैदा कर दिया है। जहां गांवोंका मुखिया बिना एक कौड़ी खर्च कराये सच्चा और शुद्ध न्याय कर देता था, वहां आज गांवके दलाल उकसा-उकसा कर चिड़िया लड़ाते हैं, और भुक्खड़ों तकको अदालतके दरवाजेपर पहुंचाकर उनका सर्वस्व हर लेनेमें कोई कोर-कसर नहीं रखते।

४. गांवका सरकारी प्रबंध और लगान-नीति

गांवके प्रबंधके लिए सरकारकी ओरसे प्रत्येक गांवमें मुख्यतः

दो मुलाजिम रहते हैं, एक पटवारी और दूसरा चौकीदार। पटवारीको जमीनकी नाप-जोख, खेतोंका लगान और जमीनके बंटवारे आदिका रेकार्ड रखना पड़ता है। पटवारी इसलिए रक्खा जाता है कि उससे गांवका पूरा हाल हुकूमतको मिले। चौकीदार पुलिसकी ओरसे रहता है कि किसी तरहका उपद्रव हो तो वह उसकी खबर ऊपरी अफसरोंको दे। विदेशी सरकारकी वर्तमान लगान-नीतिको समझनेके लिए 'टाइम्स'की 'इंडियन इयर बुक'में जो लेख है, उसका सार यह है:—

सरकारकी जमीनके लगान-संबंधी नीति यही है कि जमीनकी मालिक सरकार है और जमीनका लगान एक तरहसे उसे मिलनेवाला किराया है। सरकार इस बातको अनुभव करती है कि सैद्धांतिक दृष्टिसे इस व्याख्या पर आपत्तिकी जा सकती है, पर वह कहती है कि सरकार और किसानके बीच अभी जो संबंध है उसको स्पष्ट करनेके लिए यही शब्द उपयुक्त है। किसान अपनी जमीनकी हैसियतके अनुसार सरकारको लगान देता है। लगान पर समय-समय पर पुनः विचार करनेके लिए जो सरकारी कार्यवाही होती है, उसे सेटलमेंट या बंदोबस्त कहा जाता है। भारतमें दो तरहके बंदोबस्त हैं, स्थायी और अस्थायी। स्थायी बंदोबस्तमें तो लगान हमेशाके लिए स्थिर कर दिया जाता है, जो किसानसे नहीं बल्कि जमींदारसे वसूल किया जाता है। लार्ड कार्नवालिसने सन् १७६५में स्थायी बंदोबस्त कर दिया। अवध और मद्रासके प्रांतोंके कुछ हिस्सोंमें भी स्थायी लगान निश्चित कर दिया गया था। शेष सारे देशमें अस्थायी बंदोबस्तकी प्रथा जारी है। सरकारके सरवे विभाग द्वाराकी गई सरवेके आधार पर तीस-तीस वर्षमें प्रत्येक जिलेकी जमीनकी पूरी जांच होती है। प्रत्येक गांवकी जमीन नापी जाती है। नकशे बनते हैं। हरेक किसानके खेतको उसमें पृथक्-पृथक् बनाया जाता है, और उनके अधिकारोंका रजिस्टर रक्खा जाता है; जिसमें जमीनोंका लेन-देन आदि लिख लिया जाता है। इस पुस्तकको 'वाजिबुल अर्ज' (रेकर्ड ऑव राइट्स) भी कहते हैं।

यह सब जांचकर उसके अनुसार लगान कायम करनेका काम भारत सरकारकी सिविल सर्विसके खास तौर पर नियुक्त सभ्यों द्वारा होता है, जिन्हें सेटलमेंट अफसर कहा जाता है। मि० स्ट्रेची अपनी पुस्तक (इंडियाके संशोधित संस्करण १९११) में सेटलमेंट अफसरके कार्योंका नांचे लिखे अनुसार दिग्दर्शन कराते हैं—

सेटलमेंट अफसरका काम

“सेटलमेंट अफसरको सरकारकी मांग निश्चित करनी पड़ती है, और जमीन संबंधी तमाम अधिकारों, हकों और जिम्मेदारियोंको रजिस्टर कर लेना पड़ता है। उसकी सहायताके लिए इस कामके अनुभवी सहायक भी दिये जाते हैं, जो प्रायः सब देशी ही होते हैं। एक जिलेका इंतजाम करना एक बड़ी जिम्मेदारीका और भारी काम है, जिसमें दिन-रात काममें लगे रहने पर भी बरसों लग जाते थे। खेती-विभागकी स्थापना तथा अन्य सुधारोंके कारण अब तो सेटलमेंट अफसरका काम बहुत कुछ आसान हो गया है, और वह पहलेकी अपेक्षा बहुत जल्द समाप्त हो जाता है। जितना भी काम सेटलमेंट अफसर द्वारा होता है, उसकी उच्चाधिकारियों द्वारा जांच होती है, और लगान-निर्णय संबंधी उसकी सिफारिशें तभी अंतिम समझी जाती हैं। उसके न्याय-संबंधी निर्णयोंकी जांच दीवानी अदालतोंमें हो सकती है। सेटलमेंट अफसरका यह कर्तव्य है कि वह जमीन संबंधी उन तमाम अधिकारों और हक्कातको नोट करले, जिनपर आगे चलकर किसान और सरकारके बीच झगड़ा होनेकी संभावना हो। मतलब यह कि वह किसी बातमें कोई परिवर्तन नहीं कर सकता ! जो कुछ भी बात हो, उसीको वह ठीक-ठीक लिख ले।”

दो प्रणालियां

अस्थायी बंदोबस्तमें भी लगान दो प्रणालियोंसे वसूल किया जाता है; एक रैयतवारी और दूसरी जमींदारी। जहांतक लगानसे संबंध है, दोनोंमें स्थूल रूपसे यह भेद है कि रैयतवारी प्रणालीसे जिन प्रदेशोंमें लगान वसूल किया जाता है, वहां कारतकार सीधा सरकारको लगान देता है, जहां

जमींदारी प्रणाली है, वहां जमींदार अपने इलाकेका लगान खुद वसूल करके देता है। अवश्य ही इसमें उसे भी कुछ हिस्सा मिलता है।

रैयतवारी प्रणाली भी दो तरहकी होती है। एक तो वही जिसमें किसान खुद सरकारको लगान देता है, और दूसरी वह जिसमें गांव या जातिका मुखिया गांवसे लगान वसूल करके देता है। सरकारके प्रांत जिम्मेदार तो मुखिया ही होता है। इस तरहकी रीति उत्तर भारतमें अधिक है और पहिले प्रकारकी रैयतवारी प्रणाली मद्रास, बंबई, ब्रह्मा और आसाममें प्रचलित है।

पहलेकी अपेक्षा आजकलकी लगान नीति सब प्रकारकी जमीनों पर, किसानोंके लिए अधिक अनुकूल है। पहले तो आगामी सेटलमेंटकी अवधिमें जमीनकी जो औसत कूती ज्ञाती थी, उसी पर लगान लगा दिया जाता था। अब तो लगान कूतते समय जमीनकी जो उपज प्रत्यक्ष पाई जाती है, उसीके आधार पर लगानका निश्चय किया जाता है। इसलिए किसान अगर अपनी मेहनतसे जमीनकी पैदावार को कुछ बढ़ा लेता है, तो उसका सारा फायदा उसीको मिलता है। हां, नये बंदोबस्तमें इस जमीनको किस वर्गमें रक्खा जाय, इसपर पुनः विचार करके, यदि किसानका लाभ नहर, रेल, जैसी सार्वजनिक लाभकी वस्तुके कारण अथवा बाजार-भावोंमें वृद्धि होनेके कारण बढ़ गया हो, तो उस जमीनको नये वर्गमें डाला जा सकता है। पर सरकारने इस सिद्धांतको अब मान लिया है कि किसी खास तरीके पर कोई किसान अगर अपनी जमीनकी उपज बढ़ा लेता है, तो उसपर लगान न बढ़ाया जाय। इस विषयमें उसने कुछ नियम भी बना लिये हैं।

लगानकी तादाद

भारतमें जमीन पर जो लगान लिया जाता है, उसकी एक निश्चित दर नहीं है। वह स्थायी बंदोबस्तवाले सूबोंमें एक प्रकारका है तो अस्थायी बंदोबस्तवाले सूबोंमें दूसरे प्रकारका। फिर जमींदारी तथा रैयतवारी प्रदेशोंमें और भी अलग-अलग। रैयतवारीमें भी जमीनकी किस्म उसके

अधिकार आदिके अनुसार न्यूनाधिक है। बंगालमें लगभग १६,००,००,००० रुपये जमींदार लोग अपनी रैयत पे वसूल करते हैं चूंकि वहां स्थायी बंदोबस्त होगया है, इसलिए सरकार उसमेंसे केवल ४,००,००,००० रुपये लेती है। अस्थायी बंदोबस्तवाले प्रदेशोंमें जमींदारोंसे, अधिक-से-अधिक लगानका ५० फी सेंकड़ा सरकार वसूल करती है। कहीं-कहीं तो उसे फी सेंकड़ा ३५ बल्कि २५ ही पड़ता है। पर यह निश्चित है कि वह फी सेंकड़ा ५० से कभी अधिक नहीं होता। रैयतवारी प्रणालीमें सरकारका हिस्सा कितना होता है यह ठीक-ठीक बताना जरा कठिन ही है। पर जमीनकी पैदावारका अधिक-से-अधिक पांचवां हिस्सा सरकारका भाग समझ लिया जाय। इससे कम तो कई प्रकारके रेट मिलेंगे, पर इससे अधिक तो कहीं नहीं हैं।

लगभग सोलह-सत्रह वर्ष पहले भारतके कुछ प्रतिष्ठित लोगोंने भारत सरकारको अपने दस्तखतसे इस आशयकी एक दंख्वास्त (Memorial) भेजी थी, कि वह जमीनकी उपजके पांचवें हिस्सेसे ज्यादा लगान कभी न ले। उस समय लार्ड कर्जन वाइसराय थे। उन्होंने इस 'मेमोरियल' तथा अन्य 'रिप्रेजेंटेशंस'के जवाबमें अपनी लगान-नीतिके बचावमें एक प्रस्ताव प्रकाशित किया था। उसमें लिखा था कि "सरकारको जितना लगान लेने-को अभी कहा जा रहा है, उससे तो इस समय वह बहुत कम ले रही है। प्रत्येक प्रांतमें औसतन् लगान इससे कम ही है।" यह प्रस्ताव तथा उन प्रांतीय सरकारोंके बयान भी, जिन पर यह कथन आधार रखता था, बाद-में पुस्तकाकार छपा दिए गए थे। आज भी सरकारकी लगान-नीतिके नियमोंको प्रकट करनेवाली वही सबसे प्रामाणिक पुस्तक समझी जाती है। उपर्युक्त प्रस्तावमें अनेक सिद्धांत निश्चित किए गए हैं। उनमेंसे मुख्य-मुख्य बातें नीचे दी जाती हैं--

लगान-नीति

"(१) जमींदारी प्रदेशोंमें सरकारकी नीतिकी कुंजी यही है कि धीरे-धीरे लगान कम किया जाय। अधिक-से-अधिक फी सेंकड़ा ५०

मालगुजारी ली जाय । इस समय तो यदि गलती होती है, तो लगान कम तो वसूल किया जाता है, अधिक नहीं ।

(२) इन-प्रदेशोंमें जमींदारीके अत्याचारोंसे काश्तकारोंको बचानेके लिए कानून बनाकर या अन्य तरहसे हस्तक्षेप करनेमें सरकार कभी हिचकिचाती नहीं ।

(३) रैयतवारी प्रदेशोंमें बंदोबस्तकी म्याद दिन-ब-दिन अधिक बढ़ानेकी कोशिश हो रही है । नये बंदोबस्तके समय जो-जो कार्यवाहियां होती हैं उनको अधिक सरल और सस्ती बनानेकी नीति है ।

(४) जमीन संबंधी स्थानीय कर बहुत ज्यादा और भारी नहीं है ।

(५) जैसा कि कहा जा रहा है, जमीनसे इतना कर वसूल नहीं किया जा रहा है कि उसके कारण लोग दरिद्र और कंगाल हो रहे हों । उसी तरह अकालोंका कारण भी लगान-नीति नहीं है । तथापि सरकारने आगेके कार्यकी सुविधाके लिए कुछ सिद्धांत कायम कर लिए हैं ।

(अ) अगर लगानमें इजाफा करना है तो वह क्रमशः और धीरे-धीरे किया जाय ।

(ब) लगान वसूल करनेमें कुछ उदारतासे काम लिया जाय । मौसम तथा किसानोंकी दशाको ध्यानमें रखते हुए, कभी-कभी लगान वसूल करनेकी तारीख बढ़ा दी जाय और लगान माफ भी कर दिया जाय ।

(इ) स्थानीय कठिनाईके समय लगान बड़े पैमाने पर घटाया भी जा सकता है । ”

ऊपरकी प्रकाशित नीति हाथीके दिखानेके दांत हैं । खानेके दांत और ही हैं । इस अवतरणसे तो ऐसा जान पड़ता है कि प्रजाका दरिद्र होना, बार-बार अकालका पड़ना, करोड़ोंकी संख्यामें भारतवासियोंका मरना सब कुछ भारतवासियोंके अपने कसूर से है । लगान और मालगुजारीकी सारी शिकायतें भूठ हैं । उसका एक अच्छा-सा उदाहरण यह है कि गवर्नमेंट कहती तो है

कि हम मुनाफेका ज्यादा-से-ज्यादा आधा लेते हैं परंतु मातार ताल्लुका (गुजरात)में लगानका ३.२६ गुना कर लगाया गया। दो-एक गांवोंमें ५१ प्रतिशत था, परंतु बाकी सब गांवोंमें ७१ से लेकर ६४ प्रतिशत तक कर लगाया था। जो बातें इस संबंधमें सरकारके ही बताये हुए अंकोंके आधारपर हम पहले दिखा आये हैं उनके ऊपर इस अवतरणसे कैसी सफेदी हो जाती है। ज्यादा टीका-टिप्पणीकी जरूरत नहीं है। सारांश यह कि इस सफेदीके होते हुए भी अत्यंत कठोर और किसी प्रकार न मिटने-वाला सत्य यह है कि संसारमें कोई देश न तो भारत-सा दरिद्र है, और न ऐसे भारी भूमि-करकी चक्कीमें पिस रहा है। इस भारी करके बोझको सहना भी हमारे देशके लिए लाभकर होता, अगर यह धन हमारे देशके भीतर ही खर्च किया जाता। एक तो भारी करका अत्याचार था ही, दूसरे उससे भी कहीं भारी अत्याचार यह है, कि देशका धन बाहर चला जाता है। इसपर बड़े भोलेपनसे यह जवाब दिया जाता है कि आखिर हकूमतका खर्च और सेनाका खर्च कैसे चले ? दरिद्र किसान इस जवाबसे कभी संतुष्ट नहीं हो सकता। “अगर आप किफायतसे खर्च नहीं कर सकते, तो आपमें बंदोबस्तकी योग्यता नहीं है। आपने हमसे कब पृछा कि हम इतना खर्चीला बंदोबस्त करें या न करें। हमें आपकी सेवा नहीं चाहिए। आपके लुटाऊ कलेक्टर और कमिश्नर नहीं चाहिए। हमें तो चाहिए रोटियां, जिनके लिए हम तरस रहे हैं।”

१. “An Economic Survey” Young India, 1929, page 389 para 6.

: १० :

किसानोंकी बरबादी

१. क्या थे क्या हो गए ?

हम जब अपने पहलेकी सुख-समृद्धिके इतिहाससे आजकी अपनी दशाका मुकाबिला करते हैं, तो चकरा जाते हैं कि हम क्या थे, आज क्या हो गए। हम सुखसे रहते आए। मेहमानों-से जी खोजकर मिलते रहे। मेहमान आते थे तो हम अपना परम-सौभाग्य मानते थे। उनके साथ हमारे घरोंमें कल्याण आता था। लक्ष्मी आती थी। परंतु जबसे ये विदेशी व्यापारी मेहमान आये तभीसे हमारा दुर्भाग्य शुरू हो गया। पहले भी विदेशियोंसे संबंध था। परंतु वे सचमुच व्यापारी थे। लुटेरे न थे। ये कैसे मेहमान आये जिनकी निगाह सदा हमारे मालपर रही और आज भी, जब हम बरबाद हो गए हैं, उनकी लूट-खसोट घटनेका नाम नहीं लेती।

२. लुटेरोंकी मेहमानी

जिस समय विदेशियोंसे हमारा अधिक संबंध न था उस समय भारतवासियोंकी खत्ती बखारियोंमें अन्न समाता न था, पशु यथेष्ट थे, दूध-घी अच्छी तरह मिलता था, लोगोंके शरीरपर मजबूत कपड़े भी अच्छी तरह दिखाई देते थे और मंहगीका तो कहीं नाम भी न था। उन दिनों हृदयमें कंजूसीको जगह न मिलती थी। कोई मेहमान आजाता था तो वह भार नहीं होता था। उसके आनेसे किसान फूले नहीं समाता था। देशवासियोंमें सादगी, संतोष तथा आजादी दिखाई देती थी। किंतु जबसे हम शिकारियोंके जालमें उलझ गए, तबसे हमारा धन और माल जहाजों-में लद-लदकर यहांसे जाने लगा। पहले यहांकी अनमोल कारीगरी-

की चीजें ही जाती थीं, परंतु अब कच्चा माल ढो-ढोकर जाने लगा। आज तो विदेशियोंका बस चले तो वे भारत भूमिकी आतें तक निकालकर रेलमें लादकर लेजायं। और यही हो भी रहा है। सोना, चांदी और मँगनीज आदि धातुओंकी खानोंसे जो माल निकलता है, वह कहां जाता है? अन्न, रुई, तिलहन— यहांतक कि हड्डियां तक बिनवा-बिनवाकर कहां जाती हैं? साथही मजेदार बात यह है, कि हमें बतलाया जाता है, कि अंग्रेजोंको यह सब लूटनेका परिश्रम हमारे ही लाभके लिए करना पड़ता है। पांच करोड़की रुई जाती है और साठ करोड़का कपड़ा आता है। बीच-के पचपन करोड़ कहां चले जाते हैं? इस लूटसे तो नादिरशाहकी लूट अच्छी थी। उस लूटको हम लूट तो कह सकते हैं। यह कम्पड़शाहकी लूट तो लूट भी नहीं कहलाती। वह तो यही कहता है कि भारतवासियोंके शरीरकी शोभा बढ़ानेके लिए उन्हें सस्ते कपड़े देने और उन्हें भांति-भांतिके लाभ पहुंचानेके लिए ही वह यहां आया है। यही तो उसका जादू है। और सबसे बढ़कर अचरजकी बात यह है कि भारतके किसान उसकी लूटमें शामिल होते हैं और उसमें अपना लाभ समझते हैं।

३. उनका जादू

विदेशियोंने कहा कि तुम्हें खेती करना नहीं आता। तुम्हारे हल और औजार बहुत पुराने हैं, तुम्हारा खेतीका ढंग पुराना है— जंगली है। अब तुम्हें विलायती ढंगके लोहेके हल काममें लाना चाहिए। हमारा कृषि-विभाग उसका प्रयोग करके दिखावेगा। हमारे अनेक सीधे-सादे किसान इस भ्रममें पड़कर, कि साहब जो कहते हैं ठीक होगा, उनके कहे पर चले, परंतु नतीजा उलटा ही हुआ। साहब कहते हैं कि किसानोंके खेत विस्तारमें बहुत छोटे-छोटे हैं। इस तरहके खेतोंमें वैज्ञानिक ढंगसे खेती नहीं हो

सकती। भापके इंजनसे चलने वाले औजार इनमें काम नहीं दे सकते। इसलिए छोटे-छोटे किसानोंको उजाड़कर जमीनके बहुत बड़े टुकड़ोंमें खेती करनी चाहिए। ठीक है, घर-घरमें छोटे-छोटे चूल्हे रखनेमें हरेक घरकी स्त्रियोंको रोटी-पानीमें फंसना पड़ता है और उनका बहुत समय नष्ट होता है। यदि इनके स्थानमें बड़े-बड़े भठियारखाने खोल दिए जायं, तो अनेक स्त्रियोंको फुर्सत मिल जाय, उनका समय बचे और आर्थिक दृष्टिसे भी लाभ हो। अंक रखकर भी यह लाभ सिद्ध किया जा सकता है, इसलिए छोटे-छोटे चूल्होंको नष्ट करके रोटी-पानीके भंभटोंसे भी पीछा क्यों न छुड़ा लिया जाय ? भारतवासी जंगली हैं। उनका उत्तराधिकारका कानून भी पुराने ढंगका है। उसके कारण जमीन छोटे-छोटे टुकड़ोंमें बंटती जाती है। इस कठिनाईको दूर करनेके लिए एक नया कानून बनाकर छोटे-छोटे किसानोंसे जमीन छीनली जानी चाहिए, और किसी बड़े जमींदारको—चाहे वह गोरा हो या काला, दे देनी चाहिए। इससे पैदावार बढ़ेगी, वैज्ञानिक ढंगसे खेती हो सकेगी और आधुनिक औजार काममें लाये जा सकेंगे। औजार सब विलायतसे आयेंगे, टूटें फूटेंगे तो उनके कल-पुर्जे भी वहीसे मंगाने पड़ेंगे। वैज्ञानिक खाद भी काममें लाई जाय ताकि उसे बनाने और बेचनेवाली कंपनियोंको लाभ हो। उपाय तो बहुत बढ़िया है। इसकी बदौलत छोटे-छोटे किसान जमीन छोड़कर मजेके मजूर बन सकते हैं। यह सब अर्थशास्त्र है। न गृहशास्त्र, न नीतिशास्त्र, केवल अर्थशास्त्र—अर्थशास्त्र !!!

अर्थशास्त्रकी दृष्टिसे पशुपालन भी हानिकर है, इसलिए पशुओंको बेच देना चाहिए। कोई गाहक न मिले तो उन्हें कसाईखानेमें भेज दीजिए। वहां उसकी हड्डियों और चमड़े आदिकी अच्छी कीमत खड़ी हो जायगी। इसके बाद ले आइये पंप और तेलके इंजन और छोड़िये पुर चलाकर खेत सींचनेका भंभट ! कंपनी-

वाले खुद आकर इंजन चालू कर जायेंगे, इसका वे मेहनताना भी आपसे न मांगेंगे। आपको केवल किरासिन तेल लाना होगा, और कुछ नहीं। बस फिर जितनी जी चाहे उतनी सिंचाई कीजिये। किसान इस तरहकी बातें सुनकर अचंभेमें पड़ जाता है, और इंजन लानेका विचार करने लगता है। ऐसा होना स्वाभाविक ही है। वह सोचता है कि जो सबकी गति होगी, वही मेरी भी होगी।

४. हर बातमें उन्होंने अपना फायदा सोचा

पहले खेतमें जो पैदावार होती उसीमें सरकारका भाग रहता था। यदि फसल पैदा होती थी, तो सरकार लगान लेती थी और फसल न होती थी तो न लेती थी। बादकों इसमें भ्रमट दिखाई दी इसलिए नगद मालगुजारी या लगान लेना स्थिर हुआ। किस जमीनका कितना लगान होना चाहिए यह निश्चित करना सरकारका काम है, इसमें किसानकी सम्मति लेना जरूरी न रहा। वह इन बातोंको क्या जाने ? प्राचीन कालमें भारतके राजा और बादशाह पैदावारका छठा भाग बतौर मालगुजारीके लेते थे, परंतु अंग्रेज बहादुरने इसे खूब बढ़ाया। किसानकी मजूरी और लागत निकल आए तो गनीमत, बाकी सभी मालगुजारीमें चला जाता है। स्वर्गीय दत्त महोदयने सरकारी प्रमाणोंसे ही साबित कर दिया है, कि सरकार फी सैंकड़ा पचाससे भी अधिक मालगुजारी लेती है और दिन-पर-दिन इसमें भी इजाफा होता जा रहा है। किसानके सिरका बोझ इस तरह धीरे-धीरे बढ़ता ही जाता है। मालगुजारी तै करनेवाले अफसरोंके खिलाफ कोई शिकायत सरकारमें सुनी ही नहीं जाती। किसान अगर खेतका सुधार कर खेतीकी बढ़ती करता है, कुआं खुदवाता है और पैदावार बढ़ाता है; तो उसके कारण भी मालगुजारी बढ़ जाती है। ऐसी दशामें किसानको खेतीकी दशा सुधारनेकी इच्छा कैसे हो सकती है ? इस

तरीकेके कारण किसानकी माली हालत दिन-पर-दिन खराब होती गई, और कोई सहारा न रहनेके कारण अकालमें डटे रहनेकी ताकत घट गई। इसका नतीजा यह हुआ कि वह कर्जदार हो गया। जिसकी प्रतिष्ठा जितनी कम और अवस्था जितनी लाचार होती है, उसको ब्याज भी उतना ही अधिक देना पड़ता है। इस कारणसे किसानोंकी देनदारी धीरे-धीरे बढ़ती ही गई। इस समय उनके सिर पर कर्जका बोझ इतना ज्यादा हो गया है, कि वे उससे दबे जा रहे हैं और उनके छुटकारेका प्रश्न बहुत ही कठिन बन गया है।

किसानोंको इस देनदारीसे छुटकारा दिलानेके लिए दक्षिण भारतमें एक कानून बनाया गया है, उसका नाम है “दक्षिणके किसानोंको आराम पहुंचानेवाला कानून”। इस कानूनके मुताबिक पहले महाराष्ट्रमें और फिर गुजरातमें काम किया गया। इस कानूनसे सरकारकी लगान नीतिकी सख्तीमें किसी प्रकारकी कमी नहीं हुई। इसका नतीजा सिर्फ यही हुआ है, कि संकटक समय किसानोंको उधार देनेवाला भी अब कोई नहीं रहा। सरकार खुद किसानोंको रुपया उधार देती है और तकाबियां बांटती है। इसकी किरतें, नियम और ब्याज आदि बातें इस तरह गढ़ी गई हैं, कि किसान पानीसे निकलकर आगमें जा गिरा है। किसानको अपने पिताका प्रेत-कर्म करना हो या कन्याका विवाह-करना हो तो उसे तकाबी नहीं मिल सकती। वह सिर्फ खेतीके कामके लिए ही मिल सकती है। उसे वसूल करनेवाले भी माल-महकमेके अफसर ही होते हैं। पत्र-पुष्पसे उनकी भली-भांति पूजा करनी होती है, एक ओर तकाबी लेते समय किसान लूटा जाता है और दूसरी ओर उसे चुकाते समय कठिन-से-कठिन कायदोंकी पाबंदी करनी पड़ती है। इससे किसान निराश हो जाता है। एक ओर महाजनने रुपया देना बंद कर दिया, दूसरी

और सरकार सख्ती करने लगी। किमानको किसीका भी सहारा न रहा। उसे खेती या गृहस्थीके खर्चके लिए वक्त-बेवक्त कुछ-न-कुछ रुपयोंकी जरूरत पड़ती ही है, लेकिन अब वे कहांसे लाये? किसानोंकी इस बेबसीसे एक तीसरे ही दलने लाभ उठाया। यह दल काबुली पठानोंका था। हाथमें छुरा लेकर यह दल कार्यक्षेत्रमें उतरा। काबुलियोंके व्याजने महाजन और सरकारको भी भुला दिया। रुपये दो या हांडियां तुड़वाओ। यही काबुलियोंका नियम था। महाजन किमानको एकदम चूसता न था। वह आंखें दिखाता था, नरम-गरम होता था, किंतु किसानको जिंदा रहने देता था। एक तो पुश्त-दर-पुश्तसे लेनदेन, दूसरे हिंदू समाज, इसलिए वह अधिक सख्ती कर भी न सकता था। किंतु काबुलीको क्या? महाजनोंका लेन-देन बंद होने पर इस समय देहातमें काबुली जो लूट मचा रहे हैं, उससे किसानोंकी हालतका पता अच्छी तरह चल सकता है। किसान खेत छोड़कर कहां जाय और क्या करे? किसानोंको आराम पहुंचानेवाले सरकारी कानूनने ही यह हालत पैदा की है। डाक्टर भंडारकर जैसे सरकारके खैरखाहने भी एक बार व्यवस्थापिका परिषदमें काबुलियोंकी इन ज्यादतियोंका वर्णन कर, प्रजाके प्रति सरकारके उपेक्षा भावकी निंदाकी थी। एक और माजगुजारीका बोझ दिन-पर-दिन बढ़ता जा रहा है, क्योंकि बिना उसके गोरे हाकिमोंकी बड़ी-बड़ी तनखाहें और भारत-वासियोंको कब्जेमें रखने और विदेशों पर चढ़ाई करनेके लिए रक्खी हुई फौजका खर्च चलाना कठिन है और दूसरी ओर किसानोंकी देनदारी और लाभदायक कहे जानेवाले कानूनोंका भयंकर परिणाम दोनोंके बीचमें बेचारे किसान पैसे जा रहे हैं।

किसानको रुपयोंकी जरूरत तो पड़ती ही है। इसके लिए उसे ऐसी चीजें बानी पड़ती हैं जिससे रुपये मिल सकें। बच्चोंके लिए अन्न और पशुओंको चारा चाहिए। किंतु सरकार और

काबुलियोंके आगे वह इन चीजोंका विचार तक नहीं करता । बच्चे और पशुओंका चाहे जो हो, सरकारका लगान और काबुलीका पावना तो चुकाना ही होगा । इस प्रकार लगान देनेके लिए, काबुलीको खुश रखनेके लिए, महाजनसे कुछ अन्न पानी लिया हो तो उससे उन्मृण होनेके लिए, किसानको अपनी पैदावार—समूचे वर्षके कठिन परिश्रमका फल बेच देना पड़ता है । न वह अनुकूल भावकी राह देख सकता है, न अनुकूल समयकी । फल यह होता है कि उसे अपने मालका पूरा दाम भी नहीं मिलता । मजबूर होकर सब मिट्टीके मोल बेच देना पड़ता है । चैतमें जिस समय गेहूं पैदा होता है, उस समय उसे चार रुपये मन बेच देना पड़ता है, किंतु बरसातमें खाने या कातिकमें बौनेके लिए जब उसे उसकी जरूरत पड़ती है, तब वही छः रुपये मन खरीदना पड़ता है । नकद रुपये तो उसके पास रहते ही नहीं, इसलिए उसे यह भी उधार लेना पड़ता है । इन रूपयोंका ब्याज जोड़ने पर उसे पहलं-के भावसे दूना या इससे भी अधिक देना पड़ता है । इस तरह माली मुसीबतके कारण किसानको दूनी चोट सहनी पड़ती है । जिस समय किसानोंको सरकारी किश्त चुकानी होती है, उस समय किसी हाटमें जाकर देखनेसे, किसान किस प्रकार अपने अन्न मिट्टीके मोल बेचते हैं, इसका पता चल सकता है । सरकारकी किश्त महाजन या काबुलीसे भी भयंकर होती है । काबुली तो अंतमें मनुष्य ठहरा, किश्त मनुष्य थोड़े ही है जो मान जायगी । किश्त माने मशीन । मशीन चलानेके लिए आकाश टूट कर या पाताल फोड़कर कहीं-न-कहीं से तेल लाना ही होता है । किश्तकी बदौलत किसानके यहां साक्षात् यमराज आ पहुंचते हैं । जिस समय उनका आगमन होता है उस समय किसानको अपनी प्यारी-से-प्यारी वस्तु बेच देनी पड़ती है । पशुओंका चारा बेच देना पड़ता है, जी जिलानेके लिए रक्खा हुआ अन्न तक बेच देना पड़ता

है और वह भी मिट्टीके मोल । बाजार-भाव तो व्यापारके अनुसार घटता बढ़ता है । उससे फायदा उठानेके लिए वक्तका इंतजार करना पड़ता है, किंतु किश्तके समयमें घटा-बढ़ी न हो सकनेके कारण किसानको तत्काल अपनी चीजें बेच देनी पड़ती हैं । किसानको इन सब दुःखोंसे बचानेके लिए सरकारने सहयोग समितियोंकी स्थापना की । जिन किसानोंकी पंचायतें तोड़कर उनका आपसी मेल-जोल नष्ट किया गया था, उन्हींमें इन समितियों द्वारा आपसी मेल-जोलकी कोशिशकी गई । लेकिन इस उपायका परिणाम भी शून्यमें ही आया । जिन गांवोंमें ऐसी समितियां कायमकी गईं, उन गांवोंको इनसे लाभ होना तो दूर रहा, उलटे किसान इन नई किस्मके सरकारी अफसरोंके नीचे इस तरह दब गए कि जिन गांवोंमें ये समितियां अभी तक कायम हैं उनमें कोई दूसरा आंदोलन चल ही नहीं सकता । अनुभवने बतलाया है कि जिन गांवोंमें सहयोग समितियां हैं उन गांवोंमें खादीके आंदोलनकी जड़ नहीं जमने पाती । जम भी कैसे सकती है ? किसान उस सहयोग समितिके नीचे कुछ-न-कुछ दबे ही रहते हैं । ऊपरसे सुपरवाईजर और आर्गनाइजर उन्हें लाल-पोली आंखें दिखाया करते हैं । ऐसी अवस्थामें बेचारा किसान क्या कर सकता है ? सहयोग समितियोंसे क्या-क्या लाभ हुए, इसका वर्णन हम यहां करना नहीं चाहते । इस संबंधमें सिर्फ इतना ही कहना काफी है कि उनका व्याज, उनमें होनेवाली धूर्तता, उनकी किश्तें, उनकी सख्त निगरानी और उनकी गोलमाल-से जहां-जहां वे कायम हैं, वहां लोग बेतरह ऊब उठे हैं ।

५. मालगुजारीकी तहसील

सरकारने कानून बनाकर, सरकारी मालगुजारी सालमें दो किस्तोंमें लेना तय किया है, किंतु देहातमें मालगुजारी वसूल करनेवाले हाकिम या पटवारी उसे एक ही बारमें—एकमुश्त,

वसूल करनेकी कोशिश करते हैं । वे किसानपर निजी तौरसे दबाव डालकर उसे समझाते हैं कि, “भविष्यमें शायद रुपया रहे न रहे, सरकारका लगान तो आखिर देना ही होगा, सब एकसाथ ही क्यों नहीं दे देते ?” सरकारने कानून बनाया कि फसल चार आनेसे कम हो तो लगान उस साल मुल्तवी रखकर अगले साल लिया जाय । किंतु पटवारी और सर्कल इंस्पेक्टरोंकी यह हालत है कि पैदावार कम होने पर भी वे अधिक ही लिख मारते हैं । इस संबंधमें न तो वे किसानोंसे पूछते हैं न कोई जांच ही करते हैं । कानून आल्मारियोंकी किताबोंमें ही रह जाते हैं । ऊंचे अधिकारियोंको छोटे कर्मचारियोंकी बात माननी ही पड़ती है । न मानें तो देहातमें सरकारकी प्रतिष्ठा नष्ट हो जाय । गुजरातके खेड़ा जिलेमें यही हुआ था । पहले सरकारको छोटे कर्मचारियोंकी बात रखनी पड़ी थी, किंतु बादको आंदोलनके कारण उसे अपना विचार बदलना पड़ा ।

छोटे कर्मचारी अक्सर रिश्वतखोर होते हैं । किसानको जब कोई काम पड़ता है तो उनकी पूजा अवश्य करनी पड़ती है । सरकारी कानून है कि किसी मिसिलकी नकल जरूरी हो, तो एक आना देनेसे मिल सकती है, किंतु चाहे जिस किसानसे पूछिये, कि एक आना देनेपर क्या कभी समय पर काम हुआ है ? नाम बदलवाना हो, तो पहले पटवारी साहबको एक रुपया दक्षिणा देनी होगी । पटवारीकी लड़की या तहसीलदारके लड़केका ब्याह होने पर किसान क्या-क्या सौगात नजराना देते हैं, सो सुनिये । सरकारी नौकरोंको तरकारी, दूध और घीमें कितने पैसे खर्च करने पड़ते हैं ? उनके सफरके लिए सवारीका इंतजाम कौन करता है ? घोड़ेकी लगाम टूट गई तो मोची हाजिर है, तंबूके लिए खूंटोंकी जरूरत हुई तो बढ़ई बसूला लिये खड़ा है, घोड़ेके लिए घासकी जरूरत हुई तो किसान-

की लांक (दानों समेत अन्नके पौधोंके गट्ठे) मौजूद हैं, शीतल जलके लिए घड़ा या सुराही चाहिए तो कुम्हार लिये खड़ा है, हजामत या चप्पी करवानी हुई तो नाई हाजिर है, किसी दूसरे गांवको चिट्ठी या खबर भेजना है तो बेगारके लिए चमार या भंगी मौजूद है, दूधकी जरूरत हुई तो अहीर खड़ा है। धी दूसरोंको रुपये सेर नहीं मिलता, किंतु हुजूरको रुपयेका दो सेर देना होगा, क्योंकि उनसे किसी दिन काम पड़ सकता है। इस तरह छोटे-बड़े सभी हुजूर मौज करते हैं, तब मुखिया और पटवारी ही क्यों बाकी रह जायें ? मुखियाका खेत निराना है, सभी मजूरी-पेशा लोगोंको दो-दो दिन मुफ्त काम करनेका हुक्म निकाल दिया गया। खेत जोतना है तो किसीके हल-बेल पकड़ मंगाये गये, काटनेका वक्त हुआ तो मजूर बेगारमें पकड़ लाये गए, और घोड़ीके लिए चारेकी आवश्यकता हुई तो किसी कुरमी-काछीको रोज हरियालीका गट्टर पटुंचानेकी फरमाइश की गई। यह एक प्रकारका कर है। जिस तरह देसी रियासतें सरकारको कर देती हैं, उसी तरह किसानोंसे यह कर लिया जाता है। सरकार उन्हें जमीन पर रहने देती है, यह क्या कोई मामूली मेहरबानी है ? सरकारकी यह हुक्मतकी रीति बड़ेसे लेकर छोटे कर्मचारियों तक छन-छन कर चलती है। हरेक कामके लिए बड़ेसे लेकर छोटे कर्मचारी तकका अहसान सिरपर चढ़ाना पड़ता है। इसका देशवासियोंकी माली हालतके सिवा चाल-चलन पर भी असर पड़ता है। जब इंग्लैंड और भारतके आपसी संबंधोंका इतिहास लिखा जायगा, तब, इंग्लैंड क्या-क्या लूट ले गया, यह लिखा जायगा। किंतु जो गांव-के-गांव नष्ट होगए हैं, लोगोंकी नीति छिन्न-भिन्न होगई है, जनता भी डरपोक बन गई है, लोग भूठ बोलना सीख गए हैं, लोग मारतेखांको पूजने लग गए हैं, यह थोड़े ही लिखा जायगा। देशके ही मनुष्य शिक्षा प्राप्त कर

कुल्हाड़ीके बेंटकी तरह देशवासियों पर जो चोटें कर रहे हैं, वह थोड़े ही लिखा जायगा। इस देशकी सभ्यताका नाश कर अंग्रेजी शासन-पद्धतिने जो बुराइयांकी हैं, और देशवासियोंको जिसतरह लोभी, डरपोक और नालायक बना दिया है, उससे लूट और कत्ल लाख दरजे अच्छे थे ! तैमूरकी लूट, नादिरशाहकी कत्ल और अहमदशाह अब्दालीकी चढ़ाई सभी इससे अच्छे थे।

६. पशुओंकी जायदाद छिन गई

अब हम लोग जरा पशुओंपर दृष्टिपात करें। मनुष्य तो प्रजोभनमें पड़ गए किंतु पशुओंने कौनसा अपराध किया था ? जिस प्रकार गेहूँके साथ धुन पिस जाता है और सूखी चीजोंके साथ हरी चीजें भी जल जाती हैं, वही अवस्था इनकी भी हुई। पशुओंको चरनेके लिए भारतमें गोचरोंकी कमी नहीं थी, किंतु ईस्टइंडिया कंपनीके किरानी और डिरेक्टरोंसे लेकर आजतक जहां रुपयोंके लिए हाथ-हत्या मची हुई है, उसपर भूखे राज्यके पास गोचर कैसे रह सकते हैं ? गोचरोंकी जमीन लाट-की-लाट बेच दी गई, नीलाम करदी गई। धनवान व्यापारी और जमींदार पतंगेकी तरह इन लाटों पर टूट पड़े। बेचनेवाले साहबोंकी मेमोंको सोनेकी जंजीरें पहनाई गई और लाल हाथ किये गये। इन लाटोंकी जोताई साधारण बैलोंसे कैसे हो सकती थी ? हजारों बीघा जमीन कितने दिनोंमें जोती जाती ? घासकी जड़ें भी खूब गहराई तक जमी हुई थीं। बस, विलायतसे स्टीम प्लाऊ—इंजन-से चलनेवाला हल—मंगाया और बात-की-बातमें जमीन जोतकर बराबर करदी गई। जिन लोगोंके पशु इन जमीनोंमें चरकर आशीर्वाद दिया करते थे, जिन गांवोंके निकटये गोचर थे, और दूर-दूरके अहीर गडरिये जो इन गोचरोंसे लाभ उठाकर भारत-भूमिको सुजलां सफलां कहते थे, वे इस पैशाचिक हलको देखकर

दंग रह गए। इस हलको चलानेके लिए एक गोरा साहब आया था। उसके साथमें अनेक काले लोग भी थे, किंतु वे सब साहबकी टोपी पहनकर नकली साहब बन गए थे। इन सबको देखकर देहातियोंके आश्चर्यका ठिकाना न रहा।

खैर, किसी तरह ये लाट जोते गए, घासकी जड़ें उखाड़ फेंकी गईं और उनके स्थानमें कपास बोई गई। इस कपासके बोनेवाले मालामाल होगए और सरकारको भी काफी आमदनी हुई। पहले तो नीलाममें लाभ हुआ, फिर मालगुजारीमें बढ़ती हुई। किंतु दूसरी ओर लाटवाले और आसपासके ग्रामवासियोंमें भगड़ा होने लगा। जो लोग वहां पशु चराने जाते, उन्हींसे लड़ाई होती। लाटवालोंने देहातियोंको दवानेके लिए पठानोंको नौकर रक्खा। इसके फलस्वरूप वहां दंगे और हत्यायें हुईं। किंतु इनका कौन हिसाब ? हत्याओंकी ओर कौन देखता है ? जिन लोगोंके पुश्तैनी हक छिन गए, उनमेंसे कुछ लोगोंने लूटमारका पेशा इस्तिथार करके मौके-बे-मौके लाटवालोंको तंग करना शुरू किया। जिन साहबोंने यह आग लगाई थी, वे शाही-महलोंमें बैठे हुए चैनकी बंशी बजा रहे थे और देशवासियोंकी इस प्रकार दुर्गति हो रही थी। यह तो हुई मनुष्योंकी बात। वे पशु कहां गये, जिनके लिए प्रकृतिने यह भोजन सुरक्षित रक्खा था ? चारेकी कमीके कारण किसानने उनका ज्यादा तादादमें रखना उचित न समझा। उसे मजबूर होकर दो बैल और एक आध भैंस रखनी पड़ी। शेष सभी पशु उसने बेच दिये। दुबले पशु कसाईखाने और अच्छे ब्रेजिल चले गये। किसानको रुपये काफी मिले, पर वे दो ही दिनमें काफूर होगए। इस प्रकार पशु भी चले गये और रुपये भी न रहे। रह गए केवल एक दूसरेको आंखें दिखाते हुए ग्रामीण और लाटवाले। इस योजनाका सुंदर नाम रक्खा गया—डेवेलपमेंट स्कीम अर्थात् खेतीकी उन्नति करनेवाली योजना। इसने सारे गोचरों

और पड़ी हुई जमीनको खेत बना डाला। इस अमरीकन तरीकेको प्रचलित करनेके लिए सरकारको धन्यवाद दिया गया। भारतके पशु मर मिटे, किंतु इस योजनासे भारतमंत्रीको आनंद हुआ। भारतकी उन्नति हुई। यह सब आजकलके अर्थशास्त्रोंके फेरमें पड़ कर हुआ।

सरकार पांच-पांच वर्षमें पशुओंकी गिनतीके अंक प्रकाशित करती है। उन्हें देखनेसे इस बातका पता चल सकता है, कि भारतमें पशुओंकी संख्या दिनोंदिन किस प्रकार घटती जा रही है। किसी किसानके यहां बैल ही नहीं होते। वह मांग-जांच कर या भाड़े पर लाकर काम चलाता है। किसीके पास एक ही बैल होता है, वह दूसरेको साझीदार बनाकर काम चलाता है, किंतु इससे खेत बोनका काम ठीक समय पर नहीं हो पाता। किसी किसानके यहां बैलोंकी अच्छी जोड़ी होती है, तो उसका मूल्य दो ढाई-सौ रुपये आंका जाता है। सब किसान ढाई सौकी जोड़ी कैसेले सकते हैं? बैलोंकी अच्छी जोड़ी रखना आजकल हाथी बांधना समझा जाता है। अच्छी नस्लके पशु घटते जा रहे हैं। कुछ दिनोंमें उनका पता भी न रहेगा। जिस प्रकार कई किस्मके भारतीय घोड़ोंका निशान संसारसे मिट गया है, उसी तरह, यह हकूमत चलती रही तो, बैलोंकी भी अच्छी नस्लें लोप हो जायंगी। केवल गुजरातका उदाहरण लीजिये। वहां अब सिंधी लोग बैल बेचने जाते हैं। जो गुजरात किसी समय एक उद्यान रूपथा, जिस गुजरातमें गोचरोंकी कोई कमी न थी, जिस गुजरातके बैल बढ़िया माने जाते थे, उसी गुजरातके लोगोंको अब सिंधियोंसे बैल खरीदने पड़ते हैं।

आजकल एक गाय रखना भी भारी पड़ता है। पहले किसी ब्राह्मणका घर बिना गायके न रहता था, किंतु अब महंगे दामकी घास और दाना खिजाकर गाय रखना नहीं बन सकता।

पशुओंको खिलानेमें भी अर्थशास्त्र देखा जाता है। अहीर गायें पालकर क्या करें ? उन्हें क्या खिलाएं ? उन्हें बेच देनेके सिवाय और कोई चारा ही नहीं दिखाई देता। बेचनेसे अच्छी रकम मिलती है। मांसका मूल्य भी मिलता है, चमड़ेका भी मूल्य मिलता है, हड्डियोंका भी मूल्य मिलता है, खुर और सींगोंका भी मूल्य मिलता है। पशुको जिंदा रखनेमें जितना लाभ है, उसको मार डालनेमें उससे कहीं अधिक लाभ है। इस प्रकार घरमें अर्थशास्त्र दाखिल हुआ। सरकारने इसके लिए कसाईखाने खुलवा दिए। अकंले बंबईका ही उदाहरण लीजिए। कोई कह सकता है, कि वहां कसाईखानेमें प्रतिवर्ष कितने पशुओंकी हत्या की जाती है ? सरकारकी ओरसे इसका विवरण प्रकाशित होता है। पाठक उसे देख सकते हैं। बतलाइए, अब घी और दूध कहांसे लाया जाय ? कैसे खाया जाय ? खाइए घीके स्थानमें वेजीटेबिल प्रोडक्ट (वनस्पति घी) और दूधके स्थानमें नेल्सन आदिका जमाया हुआ दूध। भारतके बच्चे बिना दूधके तड़प रहे हैं, किंतु किससे शिकायतकी जाय ? गोचरोंको नीलाम करनेका साहबोंसे या उन्हें खेत बनाकर मालदार बननेवाले देशवासियोंसे ? गोचरोंकी कौन कहे, गुजरातके मातर तालुकेमें तुलसीके वन थे। वहांकी तुलसी प्रतिवर्षे गोकुल-मथुरा और काशीके देवताओंपर चढ़ाई जाती थी, किंतु वे गोड़-गोड़कर बराबर कर दिए गए और तुलसीके स्थानमें वहां कपासके पौधे लहराने लगे। यह कपास मंचेस्टर और टोकियो गई। वहांसे उसके रुपये आये। उन रुपयोंसे हमने बिलायती कपड़ा खरीदा और जो बचा उससे साबुन, तेल, फुत्तेल और मौज-शौककी हजारों चीजें लीं। दूधकी क्या आवश्यकता है ? भारतके सुकुमार तड़पते हैं तो उन्हें तड़पने दीजिए !

७. जंगल भी लुट गए

मनुष्य और पशुओंकी अवस्था देख चुके। चलो, अब जरा वृक्षोंके पास चलें। बताओ भाई तुम्हारे क्या हाल हैं ? वृक्ष माने प्रकृतिका बनाया हुआ बंगला। उसमें न जाने कितने जीव-जंतु विश्राम करते हैं। किंतु जरा सोचिए कि प्रतिवर्ष इस प्रकारके कितने वृक्ष कटते हैं ? माना कि मिल और इंजिनोंके लिए लकड़ीकी आवश्यकता पड़ती है, किंतु क्या इनके लिए नये वृक्ष भी रोपे जाते हैं ? अंग्रेजीमें एक कहावत है कि “वृक्ष रोपनेसे स्वर्ग मिलता है।” जरा इस सूत्रके अर्थ पर विचार कीजिए। बड़े शहरोंमें रहनेवाले लोग देहातोंसे लकड़ियां और कोयले मांगते हैं। खैर कोई खर्च नहीं, किंतु क्या शहरातियोंको कभी यह बात भी सूझती है कि वर्षमें कम-से-कम एक वृक्ष तो कहीं लगवा दें ? संभव है कि सूझती हो पर वे वृक्ष कहां लगायें ? तिमंजिले पर, जहां रहते हैं वहां ? उनके पास तो बिस्वा भर भी जमीन नहीं है। वे तो बिना मकानके रईस हैं। वे तो यह भी नहीं जानते कि कोयलेके जो बोरे-पर-बोरे चले आ रहे हैं ये कहांसे आ रहे हैं बंबई सरकारने महुओंके संबंधमें एक कानून बनाया है। महुओंसे शराब बनती है, इसलिए घरोंमें उनका रखना जुर्म करार दिया गया है। जब महुए घरमें नहीं रक्खे जा सकते तब वृक्ष ही रख कर क्या किया जाय ? रुपयोंके लिए तो हाय-हत्या सदैव मची ही रहती है। ऐसी दशामें महुओंके वृक्ष कब तक अपनी खैर मना सकते हैं ? केवल खेड़ा जिलेमें पांच-सात वर्षोंमें जितने महुए काटे गए हैं, उनकी कल्पना करना भी कठिन है। इनके स्थानमें नमें वृक्ष कितने लगाये गए ? विज्ञान हमें बतलाता है कि जहां वृक्ष कम होते हैं वहां वर्षा भी कम होती है। और जहां वृक्ष अधिक हैं वहां वर्षा भी अधिक होती

है। वर्षा क्यों नहीं होती ? इस संबंधमें भली भांति विचार करने पर यही मालूम होता है कि हमारे देशमें जितने वृक्ष काटे जाते हैं, उतने लगाये नहीं जाते। जर्मनीमें इस आशयका एक कानून है कि जिस दिन राजाका जन्म हो उस दिन प्रत्येक पुरुष और प्रत्येक स्त्रीको एक वृक्ष अवश्य रोपना चाहिए। किंतु इस देशमें ऐसे कानून कौन बनाये ? लावारिस देशमें किसे किसकी गरज है ? जंगलोंसे सरकारको आमदनी होती है। कुछ जंगल रिजर्व रखकर बाकी काटे जाते हैं। इनका व्यापार करनेके लिए टिंबर मर्चेन्ट (चोरी हुई लकड़ीके सौदागर) पैदा हुए हैं। रेलका विस्तार दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है। पटरीके नीचे रखनेके लिए स्लीपर्सकी जरूरत पड़ती है। इसके लिए भी जंगलों पर ही शनि-दृष्टि डाली जाती है। ज्यों-ज्यों जंगल कटते जायंगे और जमीन साफ होती जायंगी, त्यों-त्यों खेतीकी उन्नतिके लिए डेवेलपमेंट स्कीमें बनती जायंगी। इसे गनीमत ही समझना चाहिए कि कुछ जंगल रिजर्व रखे जाते हैं, किंतु यह भी केवल इसलिए किया जाता है कि लकड़ीकी मांग होनेके कारण सरकारको इन जंगलोंसे लाभ होता है। जिस दिन सरकारको मालूम हो जायगा, कि इसमें कोई लाभ नहीं है, बल्कि जमीनके लाट बनाकर देनेमें ज्यादा लाभ है, उसी दिन ये भी साफ हो जायंगे।

यह सब रोना रोनेका तात्पर्य यह है कि हमारा देश अनाथ हो गया है। लोग अपनी-अपनी सुविधाके अनुसार अपना-अपना ढोल बजा रहे हैं। बेचारा किसान इन सबोंके बीचमें मृत्यु-शैय्या पर पड़ा है।

एक जरूरी बात कहनी रह गई। भारतका माल विदेश चले जानेके कारण भूमि उपजानेकी ताकत भी बहुत घट गई है। साधारण नियम यह है कि जमीनसे जितना लिया जाय, दूसरे प्रकारसे उसमें उतना ही ढाला जाय। भारतसे प्रति वर्ष अंडो,

सरसों, तिलहन, चमड़ा, हड्डियां और गेहूं आदि कीमती वस्तुएं लाखों टन बिलायत जाता है, परंतु उनके बदले जमीनमें क्या पड़ता है ? अनेक स्थानोंमें तो किसानोंको लकड़ियां नहीं मिलती, इसलिए वे गोबरके कंडे बनाकर जलाते हैं। ऐसा करनेसे सोने-चांदी जैसी यह खाद भी नष्ट हो जाती है। इन्हीं सब कारणोंसे जमीनकी उपजानेकी ताकत दिन-दिन घटती जाती है। एक तो किसानकी माली हालत खराब, दूसरे उसके बैल अधमरे, तीसरे उसकी पैदावारका एक आना भी घरमें न रहने पाये, ऐसी अवस्था-में किस प्रकार क्या डालकर वह जमीनकी ताकत कायम रख सकता है ? सरकारका कृषि-विभाग कहता है, कि उसे विदेशियों-से कृत्रिम खाद खरीदनी चाहिए जिससे कि और भी पैसे विदेशियोंके हाथ लगें।

: ११ :

दरिद्रताके कड़वे फल

१. दरिद्रताकी हद

अभी संवत् १९८६ में ही एक समाचार छपा था कि पार्लमेंट-का कोई मजूर सदस्य भूखसे व्याकुल होकर सभा-भवनमें ही बैठे-बैठे बेहोश होगया। यह मजूर सदस्य बड़ा दरिद्र था। क्योंकि इसकी सालाना आमदनी कुल ४०० पौंड अर्थात् ५३३३ रुपये थी। पार्लमेंटके प्रभुओंने तरस खाकर ५० पौंड अर्थात् ६६७ रुपये और बढ़ा दिये, क्योंकि शायद इस गरीब सदस्यको पांच-छः प्राणियोंके बड़े परिवारका खर्च उठाना पड़ता था।^१ ब्रिटिश पार्लमेंट-की निगाहोंमें यह मजूर सदस्य, जिसकी आमदनी ४४४ मासिक

१. यह समाचार कई पत्रोंमें छपा था, परंतु न तो मैंने इसका कोई खंडन देखा, और न इसके अधिक वृत्तांत मिले।

थी, बहुत दरिद्रता थी, और उसकी आमदनी खर्चके लिए काफी न थी। यहांके लोगोंकी आमदनी संसारके सभी देशोंसे अत्यंत कम है। सिर पीछे ३७ रुपये सालानासे कम नहीं है। अगर १४-१५ रुपये रोज कमानेवाला पार्लमेंटकी नजरोंमें गरीब है तो ६-७ पैसे रोज कमानेवाला क्या होगा ? उसे किस कोर्टमें रक्खेंगे ? दरिद्रताकी भी एक हद होती है। हमारी समझमें जिस आदमीको जीवनकी रक्षाके लिए खाना कपड़ा और रहनेकी जगह भर मुश्किलसे मिले, वह बिना ऋण लिए कभी अपने यहां आये हुए मेहमानको खिला न सके, या किसी मंगतेको भिक्षा न दे सके वह 'दरिद्र' है। परंतु यह दरिद्रताकी हद आजकलकी नहीं है। यह ब्रिटिश राजमें इस दर्जे पर पहुंच गई है कि हम पहले जमानेमें दरिद्रताकी जो परिभाषा करते थे वह भारतके आजकल के मध्यम-वर्ग पर लगती है। जिनकी आमदनी सालमें पांच-छः सौ रुपयेसे कम नहीं है, या यों कहिये कि जो लोग सालभरमें लगभग उतना कमा सकते हैं, जितना कि पार्लमेंटका दरिद्र मजूर सदस्य हर महीने पाता है। जिन लोगोंकी आमदनी सालमें ५००)से कम है उनके लिए 'दरिद्र'से भी अधिक दरिद्रताकी हद बतानेवाला शब्द होना चाहिए। हमारी समझमें यह शब्द 'कंगाल' है।

हर आदमी यह अधिकार लेकर दुनियामें पैदा होता है, कि वह अपने शरीरको भला-चंगा रक्खे और अपने परिवारको और समाजको, देशको, और साथही अपनेको मन, वचन, कर्मसे अधिक-से-अधिक लाभ पहुंचावे और अधिक-से-अधिक सुख दे, और इन बातोंको पूरा करनेकेलिए उसे पूरी-पूरी योग्यता और स्वतंत्रताका अवसर मिले। समाजमें इन जन्म-सिद्ध अधिकारोंको काममें लानेकेलिए उसका रहन-सहन एक निश्चित ऊंचाई और अच्छाईका होना चाहिए। हमारे देशका रहन-सहन अनादि कालसे बहुत सादा चला आया है। हमारे मजूर और किसान

मोटर और विमान रखनेवाले कभी न थे, परंतु ब्रिटिश राज्यसे पहले इस दर्जेकी दरिद्रता भी न थी। किसान लोग खाने-पीनेसे खुश थे।

अमेरिकाका एक प्रामाणिक लेखक 'दरिद्रता'की परिभाषा यों करता है:—“दरिद्रता जीवनकी वह दशा है जिसमें आदमी, अपने कम आमदनीके या बेसमझीके खर्चके कारण ऐसे रहन-सहनसे गुजर नहीं कर सकता जिसमें कि अपने समाजकी हदके अनुसार वह आप और उसके परिवारवाले उपयोगी काम कर सकें। और वह आप शरीरसे और मनसे पूरा-पूरा उपयोगी बन सके।” वही लेखक कहता है कि “कंगाल होना जीवनकी वह अवस्था है जिसमें आदमी पूरा-पूरा या थोड़ा-बहुत अपने खाने-कपड़ेके लिए ऐसे किसी आदमीका भोहताज हो जो स्वभावसे या कानूनसे उसका सहायक न समझा जाता हो।”^१

हमारी समझमें श्री गिल्लिनकी ये परिभाषाएं बिल्कुल साफ हैं। अगर उन्होंने कम आदमनी या बेसमझीके खर्चकी शर्त न लगाई होती तो 'दरिद्रता'की उनकी परिभाषा हमारे गुलाम देशके लिए भारतीय धन कुबेरों पर भी लग सकती थी। स्वर्गीय गोखलेने कहा था कि भारतवर्षमें ब्रिटिश राजने तरक्कीके रास्तेको ऐसा बंद कर रक्खा है कि यहाँके ऊँचे-से-ऊँचे आदमीको झुक जानेको लाचार कर देता है। यहां कोई आदमी पूरी उपयोगिताको पहुंच ही नहीं सकता परंतु गिल्लिनकी परिभाषा हमारे यहांके पहली श्रेणीके लोगोंको छोड़कर बाकी सारे देश पर लग जाती है। इस तरह भारतवर्षकी साढ़े नन्यानवे प्रति मैकड़ा आबादी दरिद्र है। जिनको अपनी मेहनत मजूरीसे आधे पेट या दूसरे तीसरे दिन भी भोजन मिल जाता है, उन दरिद्रोंमें भी इज्जतका ख्याल इस

१. Gillin, J. L., "Poverty and Dependency" PP. 24, The Century Company New York, 1926. (A. W. Hayes की Rural Sociology, Longmans, 1929. PP. 430 से उद्धृत)

दर्जेका है कि वे किसीके सामने हाथ पसारनेसे मर जाना ज्यादा कबूल करते हैं। वे अपनी आंखोंके सामने अपने प्यारोंका भूखसे तड़पना देखते हुए भी भिक्षा मांगनेका अधम काम कबूल नहीं करते। इतना होते हुए भी बत्तीस करोड़की दरिद्र आबादीमें तीस लाखसे कुछ ही ज्यादा भिखमंगों, अवारों, वेश्याओं आदि लाचार निर्लज्जोंका होना कोई अचरजकी बात नहीं है।

दरिद्रताके इस स्थूल-रूप पर विचार करनेके बाद हम आगे क्रमसे इस बात पर विचार करेंगे कि इस घोर अनुपम दरिद्रताके क्या-क्या बुरे असर राष्ट्र पर पड़ चुके हैं, हम किन-किन कड़वे फलोंका अनुभव कर चुके हैं।

२. आबादी पर प्रभाव

दरिद्रताका सबसे बुरा असर आबादी पर पड़ता है।

१. भूखके सताये हट्टे-कट्टे काम करनेवाले गांवोंसे भागकर, नजदीक और दूरके शहरोंमें चले गए और कुलीका काम करने लगे, चायके बागोंमें गुलामी करने लगे या दूर-दूर विदेशोंमें चले गये; और वहीं मर-खप गए। इस तरह जो खेतीके काममें कुशल थे, गांवोंसे निकल गये, और जो काममें कुशल नहीं थे, रह गये, जिससे खेतीका काम दिन-ब-दिन बिगड़ता गया। गरीबीके कारण बालकोंको शिक्षा न मिल सकी, और गांवोंमें पढ़ानेका बंदोबस्त न हो सका।

२. कुछ तो शिक्षा न मिलनेसे और कुछ पूरी सफाई और तंदुरुस्तीका बंदोबस्त न हो सकनेसे, जिसमें धन बिना काम नहीं चल सकता था, अनेक तरहके रोग फैल गए, जिनसे आये दिन अनगिनत आदमी मरते जाते हैं, और आबादी घटती जाती है।

३. दरिद्रताके कारण अकाल पड़ जाता है, और लोग भूखों मर जाते हैं। अन्नके न होनेसे लोग नहीं मरते। अड़ोस-पड़ोसके

बाजारोंमें ग्राहियों अन्न आता है, और बराबर बिकता रहता है, परंतु अकालसे पीड़ित भुक्खड़ोंके पास खरीदनेको दाम नहीं होता, इसीलिए भूखों मर जाते हैं। पैसे सस्ते हैं, फिर भी किसानोंको कोई काम ही नहीं मिलता, जिससे वे पैसे कमा सकें। जिस साल अच्छी फसल होती है, उस साल तीन महीनेसे लेकर छः महीने तक उन्हें काम रहता है, और खेत मजदूरी देता है। जिस साल फसल नहीं होती, उस साल बारह मासकी बेकारी है। मजदूरी कौन दे ? असलमें अन्नका अकाल नहीं है। मजदूरीके थोड़े अकालमें तो किसान सारा जीवन बिताता है, पूरा अकाल तो उस समय होता है; जब फसल भी जबाब दे देती है।

३. दरिद्रताके कारण आपसके लड़ाई भगड़े होते हैं, परिवारोंमें अलग गुजारी हो जाती है, और अलग होनेवाले अपना-अपना खर्च न संभाल सकनेके कारण उजड़ जाते हैं, खेती-बारी टूट जाती है, इस तरह गांवकी आबादी घटती जाती है।

३. आदमियों पर प्रभाव

दरिद्रता सब दोषोंकी जड़ है, जिसके पास धन है वही कुलीन समझा जाता है, वही धर्मात्मा माना जाता है, वही विद्वान् और गुण-ग्राहक होता है, उसीकी बात सब लोग चावसे सुनते हैं, लोग उसके दर्शनोंको जाते हैं। दरिद्रको कोई नहीं पूछता।

दरिद्रताके कारण—

१. दौसलेके साथ लोगोंमें किसान मिलता-जुलता नहीं, उसमें बेढंगापन आ जाता है।

२. धूर्तोंके बहकानेमें जल्दी आ जाता है। जितनी चाहिए उतनी सफाई नहीं रख सकता।

३. खानेको न बक्कसे पाता है और न उचित मात्रामें पाता है, इससे दुबला और कमजोर होजाता है। उसकी चाल सुस्त हो जाती है, भरपूर मेहनत नहीं कर सकता, थोड़ेसे काममें थक

जाया करता है, भांति-भांतिके रोगोंका शिकार होता है, उसका जीवन कम हो जाता है।

४. उसका हौसला दिन-ब-दिन पस्त होता जाता है और रहन-सहनका परिमाण घटता जाता है।

५. बाल-बच्चोंके सांसारिक बोझसे जल्दी छुटकारा पानेके लिए थोड़ी ही उम्रमें ब्याह कर देता है और पासकी नातेदारियोंमें ही ब्याह करके वंशको और भी खराब कर देता है।

६. ब्याह न कर सकनेके कारण व्यभिचारमें फंस जाता है और वर्णसंकर पैदा करता है। बच्चे बहुत पैदा होते हैं परंतु पैदा-यशके समय काफ़ी मदद न मिलनेके कारण बहुतसे बच्चे सौरमें ही मर जाते हैं और दूध आदि पालन-पोषणका सामान न मिलनेसे छुटपन हीमें बच्चे माताकी गोद सूनी कर देते हैं।

७. अनेक दुखिया भुक्खड़ नातेदार, जिनको कहीं ठिकाना नहीं लगता, गरीब किसानके घर जबरदस्ती आकर रह जाते हैं। इस तरह उसके कष्ट और भी बढ़ जाते हैं।

८. उसका कुटुंब अक्सर बड़ा होता है। जितना ही बड़ा कुटुंब होता है सिर पीछे उतनी ही बेकारी भी बढ़ती है।

९. वह ज्यादा पोतवाला अच्छा खेत नहीं ले सकता। खराब खेत ज्यादा मेहनत चाहते हैं जो वह बेचारा कर नहीं सकता।

१०. चिंताओंसे उसका दिमाग खराब हो जाता है।

११. उसमें धर्म-भाव और देश-भक्तिके हौसले नहीं रह सकते।

१२. उसे देशकी दशाका और अपनी दशाका ज्ञान नहीं रहता, इसलिए चुपचाप दुःखमें घुलता रहता है, और कर्म ठोककर रह जानेके सिवा कोई उपाय नहीं कर सकता।

१३. स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है, आये दिन परिवारके भीतर और बाहर झगड़े होते रहते हैं, जिसका फल होता है फौजदारी मुकदमेबाजी और गृहस्थीका सत्यानाश।

१४. भांति-भांतिकी चिंताओंसे छुटकारा पानेके लिए तरह-तरहके नशोंकी कुदेव लग जाती है। तमाखू, गांजा, भंग, शराब, ताड़ी, अफीम आदिके पीछे तबाह हो जाता है।

१५. औरोंकी निगाहोंमें उसकी इज्जत घट जाती है।

४. रहन-सहन पर असर

हमारे देशके किसानोंका रहन-सहन कितना नीचे गिर गया है इसे सब जानते हैं। उसके पास जैसे खानेका टोटा है वैसे ही पहननेका भी। उसके पुरखोंके समयमें जब चरखा चलता था तब उसे कपड़ोंका टोटा न था, आज खाना कपड़ा दोनोंका टोटा है। तीसरी जरूरी चीज घर है। अब वह घर भी अपने लिए दरिद्रताके कारण अच्छा नहीं बना सकता। वह जीते जी नरक भोग रहा है।

अपनी दरिद्रताके कारण—

१. अपनी उपजका सबसे अच्छा माल बेच डालता है, और खराब-से-खराब अपने खर्चके लिए रख लेता है। जो शायद बिक ही नहीं सकता या लाचारी उसे बेचने नहीं देती।

२. उसका भोजन अक्सर बे-नमकका होता है। बेचारा नमक तक खरीदनेकी सामर्थ्य नहीं रखता। जिसकी आमदनी ६ पैसे रोजसे भी कम हो, वह नमक मिर्च कहां पावे।

३. उसके भोजनमें पालन-पोषणका तत्व बहुत कम होता है।

४. वह काफी भोजन नहीं पाता, कभी आधा पेट पाता है, और कभी वह भी नहीं।

५. उसे दूध, घी, मठा, तो क्या मिलेगा, उसके बच्चोंको छाछ भी नसीब नहीं होती।

६. उसके ढोर भूखों मरते हैं, उनके लिए घर नहीं होता।

७. उसके घर उसे धूप, बरसात, आंधी, तूफान और जाड़ेसे बचानेके लिए काफी नहीं होते।

८. जंगलों और पेड़ोंपर कोई अधिकार न होनेसे उसे जाड़े-के लिए काफी ईंधन नहीं मिलता, और वह लाचार हो उपले जलानेका आदि हो गया है, जिससे खेतके लिए उत्तम-से-उत्तम खाद वह चूल्हेमें जला देता है। परिस्थितिने उसे भुलवा दिया है।

९. उसके पास काफी कपड़ा नहीं है, और जो है वह विलायती है, जो काफी टिकाऊ नहीं होता, मगर सस्ता होनेके कारण लिया जाता है।

१०. उसकी खेतीका सामान बढ़िया नहीं है, पूरी मेहनत करके भी उससे वह इतना अच्छा काम नहीं ले सकता, जितना कि अच्छे हल बैलसे होता।

११. उसे अपने रोजगारके बढ़ानेका कोई साधन प्राप्त नहीं होता।

१२. मजूरीकी दर बहुत कम होनेसे किसानको ऐसे कामके लिए मजूर नहीं मिल सकते जिन्हें वह अकेला नहीं कर सकता और वहां लड़कों और औरतोंकी मदद काफी नहीं होती।

१३. अपने खेतों पर जो मजूरीकी जाती है उसका बदला भी बहुत थोड़ा मिलता है।

१४. वह गाय पाल नहीं सकता और न छोटे-मोटे घरेलू रोजगार कर सकता है, और करे भी तो दशा ऐसी है कि रोजगारमें सफलता नहीं मिलती।

घर-गृहस्थीमें किसान और उसका परिवार अपने दादाके समयमें आजकी तरह बेकार नहीं रहता था। खेतीसे जो समय बचता था उसमें मजबूत हाथ-पैरवाला किसान और मेहनतके काम किया करता था। गाड़ी चलाकर थोक-का-थोक माल बाजार ले जाना, खंडसालें चलाना, रूई धुनना, गाय भैंस आदि बड़े ढोर पालना, सन पटसन आदि बँटना, टोकरियां बनाना आदि अनेक तरहके काम देहातोंमें सब तरहके लोग करते थे।

इसके सिवा पेशेवाले किसान, कुम्हार, लुहार, बढ़ई आदि तो अपने काम करते ही थे, ये पेशेवाले तो थोड़ा बहुत अब भी अपना काम करते ही हैं। इसके सिवा इनके घरकी स्त्रियां और लड़के भी तरह-तरहके काम करते थे। घरकी गाय, बकरी, भेड़ आदिकी सेवामें लड़के बड़ी मदद पहुंचाते थे। स्त्रियां और लड़कियां दूध, दही, मक्खन आदिके काम करती थीं, आटा पीसती थीं, धान आदि कूटती थीं, मक्खन निकालती थीं, चर्खा कातती थीं। कपड़े सीना, रंगना और बच्चोंका लालन-पालन चौका-बरतन रसोई, ये सारे काम घरमें होते थे। परंतु आज गौवोंका पालन करनेकी सामर्थ्य न होनेसे दूध, दही, मक्खन, घीका काम उठ गया है। चर्खा और ओटनीको उठ गये दो पीढ़ीके लगभग हो गए। घी-दूध और कपासका काम जो घरमें होता था, किसानके लिए बड़े लाभकी चीजें थीं। घी दूधसे परिवार भी तृप्त होता था और पैसे भी आते थे। ओटनी और चर्खेसे परिवारका तन भी ढकता था और पैसे भी आते थे। इसके सिवा पेशेवालोंके गांव-के-गांव होते थे, जो आज उजड़ गये हैं। जहां कहीं खहर बनानेकी कला बढ़ी हुई थी, वहां कोरी, कोष्टी, तांती और जुलाहे आदि बुनकरोंकी बड़ी-बड़ी बस्तियां थीं। ये बस्तियां उजड़ गईं। जो थोड़ी बहुत बची हुई हैं, विलायती सूतमें उलझी हुई हैं। ग्वालोंने गांव-के-गांव थे, जिनके यहां दूध, घीका भी रोजगार था और खेती भी होती थी। बहुतसे ऐसे गांव उजड़ गए और जो बचे हुए हैं उनकी दरिद्रता आंखोंमें खून लाती है। यों गांव-गांवमें जहां सभी जाति और पेशेके किसान मिल जुलकर रहते थे, वहां दो-एक घर खहर बुननेवालोंके भी थे, और हफ्तेके दिनोंमें जहां बाजार लगा करते थे, सूत कपास और खहरका लेनदेन और बिक्री हुआ करती थी। रोजगारके अच्छा होनेसे लोगोंके रहन-

सहनका परिमाण बढ़ा हुआ था। रोजगार टूट जानेसे रहन-सहन-का परिमाण गिर गया।

५. शिक्षा पर प्रभाव

पहले गांव-गांवमें टोल थे, पाठशालाएं थीं। गांवके भय्याजी सब बालकोंको पढ़ाते थे। गांवके सभी किसान बालक थोड़ा लिखना पढ़ना और हिसाब-किताब सीखते थे। टोलों, पाठशालाओं-के खर्चके लिए माफीके खेत थे। उनकी आमदनीसे पढ़ाईका खर्च चलता था। गांववाले मास्टर्सको सीधे देते थे। और अधिकांश पंचायतके द्वारा सारा खर्च दिलवाया जाता था। पढ़ाईके लिए कहीं-कहीं घर होते थे, कहीं चौपालोंमें जगह होती थी, कहीं मंदिरों और मठोंमें और कहीं-कहीं बागोंमें। जब पंचायतोंका अधिकार छिन गया, माफी खेत छिन गए, किसान दरिद्र हो गए, तब सारा बंदोबस्त टूट गया। कुछ काल तक शिक्षाका महत्व समझनेवाले किसानोंने, अधिकांश इकों-दुकोंने, अपनी ओरसे बच्चोंके पढ़नेका प्रबंध जारी रखवा। कहीं-कहीं बेहरी लगाकर कुछ समय तक पाठशालाएं ठहरीं, परंतु ठीक संगठन न होनेसे इस तरहके निजी उद्योग समाप्त हो गए। दरिद्रताके कारण—

१. गांव वाले बच्चोंके पढ़ानेका बंदोबस्त नहीं कर सकते। जो स्कूल डिस्ट्रिक्ट बोर्डने कायम किये हैं वे बहुत कम हैं, दूर-दूर पर हैं, जहां छोटे-छोटे बच्चे नहीं पहुंच सकते, इसलिए देशके बच्चोंकी बहुत थोड़ी गिनती तालीम पा सकती है।

२. जिन थोड़ेसे बच्चोंको तालीम दी जाती है, उन्हें किसानोंके कामकी कोई शिक्षा नहीं मिलती, क्योंकि किसानोंको डिस्ट्रिक्ट बोर्डमें शिक्षाके बारेमें अपनी नीति चलानेका कोई अधिकार नहीं है, और उनके पास वे साधन नहीं हैं कि कामकी शिक्षादे सकें।

३. वे अपने पढ़नेवाले बच्चोंको खेतीका काम नहीं सिखा सकते। पढ़ने वालोंको ऐसी शिक्षा दी जाती है कि वह शिक्षा

पाकर खेती आदिके कामोंको नीच समझने लगते हैं। कस्बों और शहरोंमें हलकी नौकरियोंके पीछे ठोकर खाते फिरते हैं।

४. खेतीकी शिक्षा न होनेसे खेतीका काम दिन-पर-दिन खराब होता जा रहा है।

५. किसान इतने गरीब हैं कि बच्चोंके लिए किताबें मोल नहीं ले सकते।

६. वे अपने लिए कोई अखबार नहीं खरीद सकते, जिससे खेतीका, रोजगारका या दुनियाका कुछ हाल जान सकें।

७. वे देशके आंदोलनोंकी खबर नहीं रखते।

८. वे अपनी ही दशा नहीं जानते, और न उसके सुधारनेके लिए कोई आंदोलन कर सकते हैं।

९. वे अपनी ओरसे शिक्षक नहीं रख सकते जो उनके नेताका काम करसके और प्रजाहितके कामोंमें मदद दे।

१०. वे आपसमेंसे किसीको नेताके कामके लिए तैयार नहीं कर सकते।

११. उनकी बहुत बड़ी संख्या निरक्षर हो गई है, और निरक्षरताके जितने बुरे परिणाम हैं वे सब भोग रहे हैं।

१२. बालकोंको ऊंची शिक्षाका कभी अवसर नहीं मिलता।

१३. खेतीकी शिक्षा न मिलनेसे लाभ कम होता है। लाभ न होनेसे खेतीका सुधार नहीं होता, सुधार न होनेसे दरिद्रता बढ़ती जाती है। दरिद्रता बढ़ते जानेसे आगे शिक्षाकी भी कोई आशा नहीं हो सकती। यह बड़ा ही दूषित भ्रामक चक्र है, जिसमें सारा देश फंसा हुआ है।

६. जायदाद पर प्रभाव

जब किसान खुशहाल था, तब उसकी गृहस्थी बड़ी होती थी, घर बड़े और हवादार थे, सब ऋतुओंके अनुकूल बने हुए थे।

गोशाला थी, बाग, कुएं, तालाब, मंदिर, चौपाल सब कुछ था। पशुओंके चरनेके लिए गोचर-भूमि अलग होती थी। किसान और उसके पशु खुश रहते थे। आज सारी दशा विपरीत है।

दरिद्रताके कारण—

१. वह हवादार और अच्छे घर नहीं बना सकता। जीवनके आवश्यक सामान नहीं जुटा सकता।

२. वह लाचार होकर उपले जलाता है, क्योंकि लकड़ी न खरीद सकता है, न निर्यनताके कारण पेड़ मोल ले सकता है, न जमींदारसे पेड़ लगाने या काटनेके लिए आज्ञा मोल ले सकता है और न विदेशी सरकारकी बाधाके कारण जंगलसे लकड़ी काट सकता है। इस तरह उसे खेतके लिए सबसे उत्तम खाद खोना पड़ता है।

३. उचित खादके बिना खेतकी पैदावार दिन-पर-दिन घटती जाती है।

४. वह खेतका मालिक नहीं है, और जानता है कि खेतकी दशा बहुत अच्छी हो गई तो लगान बढ़ जायगा, या बे-दखली हो जायगी, या बंदोबस्त पर सरकारी मालगुजारी बढ़ जायगी। इसलिए खेतमें सुधार करनेका उसे हौसला नहीं हो सकता।

५. वह अपने गाय, भैंस, बैलका ठीक-ठीक पालन-पोषण नहीं कर सकता।

६. जो पहले गोचर-भूमि थी वह अब खेत हैं। ढोरोँकी चराईका बंदोबस्त अच्छा नहीं है जिससे ढोर बहुत दुबले हो गए हैं।

७. लोग गो-पालनके रोजगारमें टोटा होनेसे उस ओर ध्यान नहीं देते, इससे यह कारोबार चौपट हो गया।

८. गो-वंश-सुधारकी रीतियां भूल जानेसे ढोरोँकी नसल खराब हो रही है।

६. फलोंका रोजगार ठीक रीतिसे न होनेके कारण लोगोंका ध्यान अच्छे बाग लगाने या बागकी रक्षा पर नहीं है।

१०. आपसमें लड़ाई-भगड़ा होनेके कारण बहुत छोटे-छोटे हिस्सोंमें बंटवारा हो रहा है, एक खेत घरके पास है तो दूसरा मील भर दूर, तीसरा उससे एक फर्लांग पर, इस तरह इकट्ठी खेती करनेका मौका नहीं है। दूसरे सब मर्दोंमें खर्च बढ़ता है, और रखवाली ठीक तौर पर नहीं हो सकती।

११. खेतीके औजार पुराने और दकियानूसी हो गए हैं, और नये और अच्छे खरीदे या बनवाये नहीं जाते।

माली हालत किसानोंकी इतनी खराब है कि वे आप-दादोंकी जायदादको धीरे-धीरे खोते जाते हैं, उनके पास धन नहीं है कि अपनी भागती हुई जायदादको चतुर साहूकारके चंगुलसे बचा सकें।

७. तंदुरुस्ती पर असर

पहलेके किसान शहरके लोगोंके मुकाबले अधिक हृष्ट-पुष्ट और तंदुरुस्त समझे जाते थे, पर आज वह चलती-फिरती हुई ठठरियां हैं, जिनके चेहरे पर उदासी है। जान पड़ता है कि उन्होंने हंसी-खुशीके दिन नहीं देखे हैं, और स्मशानकी ओर चले जा रहे हैं। दरिद्रताके कारण--

१. अपनी तंदुरुस्ती पर वे उचित ध्यान नहीं रख सकते।

२. कभी-कभी-उन्हें खेतोंमें कमर तोड़ परिश्रम करना पड़ता है, परंतु सालमें अधिक बेकार ही रहना पड़ता है। इस असंयम-से बच नहीं सकते।

३. पोषण काफी नहीं होता, इसलिए जीवन-शक्ति कम होती है और रोगका मुकाबला नहीं कर सकती।

४. रोगके कीड़े उनके शरीरमें जल्दी फैलते और घर कर लेते हैं।

५. पेटके कीड़े और चुनचुने उन्हें ज्यादा होते हैं।

६. ठीक भोजन न मिलनेसे तरह-तरहके चर्म-रोग होजाते हैं।
 ७. फैलनेवाले रोग जब फैलते हैं तो काबू में नहीं आते।
 ८. किसान लोग रोगकी भयानकता समझते हुए भी उससे बचनेका उपाय नहीं कर सकते।

९. कपड़ा काफी न होनेसे फसली बीमारियां होती रहती हैं।
 १०. घरोंमें काफी बचाव नहीं होता।
 ११. मलेरियासे बचनेके लिए वे मसहरियां इस्तेमाल नहीं कर सकते।

१२. घरोंमें हवा और रोशनीका काफी बंदोबस्त नहीं हो सकता।

१३. खाने-पीनेके लिए पानी बहुत गंदा आता है। साफ और शुद्ध जलका बंदोबस्त अनेक स्थानों पर नहीं हो सकता। तालाबका पानी हर तरह गंदा होता है और कुंए गहरे नहीं होते तो परनालोंकी गंदगी कुंएके पानीमें मिल जाती है। शुद्ध पानीका खर्चीला बंदोबस्त नहीं किया जा सकता।

१४. स्वास्थ्य-रक्षाकी शिक्षा उन्हें नहीं मिलती।

१५. बच्चे बड़ी संख्यामें मरने हैं।

१६. दवा-इलाजकी सहायता नहीं मिलती।

१७. अच्छे वैद्य-हकीम गांवोंमें नहीं मिलते। बीमार होने पर दवा-इलाजका खर्चा उठा नहीं सकते।

१८. अस्पताल बहुत दूर पड़ते हैं।

१९. देहातोंमें घूमनेवाले डाक्टर न तो समय पर पहुंच सकते हैं, न काफी मदद करते हैं, और न इस अनमोल मददका लाभ ज्यादा लोग उठा सकते हैं।

२०. लोगोंकी औसत उम्र घटकर २८ वर्ष हो गई है।

२१. शरीरके पोषणके लिए जितने पदार्थ चाहिए उनमें मुख्य नमक है। जो अनेक रोगोंसे रक्षा करता है, यह नमक आदमीको

काफी नहीं मिलता, और ढोरोको तो बिल्कुल नहीं मिलता, क्योंकि किसानोंकी थोड़ी आमदनीके लिए वह बहुत मंहगा है।

२२. ढोरोमें बीमारियां फैल जाती हैं, मगर किसान इलाज नहीं कर सकता।

२३. जहां ढोर बांधे जाते हैं, वहांकी काफी सफाई किसान नहीं कर सकता।

२४. बीमारियोंसे ढोर मर जाते हैं और दूसरे ढोरोमें बीमारी फैला जाते हैं, इस तरह किसानका कई तरहका नुकसान हो जाता है।

२५. ढोरोकी बीमारीमें डिस्ट्रिक्ट बोर्डसे मददका लाभ बहुत कम उठा सकता है।

जब गांवका बंदोबस्त पंचायतके हाथमें था, गांवमें वैद्य भी होते थे, और दवा-इलाजका बंदोबस्त अपना होता था। उसके सिवाय शिक्षा ऐसी थी कि ग्वाले और गृहस्थ किसान शालिहोत्री और डाक्टरका बहुतेरा काम जानते थे। धायका काम तात्कालिक चिकित्सा और दवा-दर्पण घर-घर बूढ़े किसान और घरकी बाल-बच्चोंवाली लुगाइयां इतना काफी जानती थीं, कि डाक्टर और अस्पतालकी मोहताज न थीं। परंतु पुरानी शिक्षाकी विधि उठ गई और बस्तोके उजड़नेसे भी परंपरा और अभ्यास दोनोंकी हानि हुई।

८. माली-दशा पर प्रभाव

इस विषयमें तो पिछले पृष्ठोंमें हम 'सरकारी लगान नीति', उसकी रकमें और उसके वसूल करनेकी विधि इत्यादि पर विचार कर चुके हैं। सारी दरिद्रताका कारण तो वह स्वार्थी नीति है जिसका व्यवहार भूमि-करके संबंधमें किया जाता है। वही तो किसानकी दरिद्रताका प्रधान कारण है। दरिद्रताके कारण—

१. मिचर्ईका वह काफी प्रबंध नहीं कर सकता, और वर्षा के भरोसे रह जाता है। वर्षा न हुई तो फसल गई।

२. वह अकेले मेहनत करता है । मजूरी न दे सकनेके कारण या मजूर न मिलनेके कारण उसकी खेती जितनी चाहिए उतनी सफल नहीं होती ।

३. पैदावारके मुकाबले लागत खर्च खेतीमें ऊंचा पड़ता है, क्योंकि वह अच्छे औजार नहीं काममें ला सकता । उसके खेत दूर-दूर हैं और टुकड़े-टुकड़े हैं । उसके बैल दुबले हैं, और अनाज इसीलिए कम उपजता है ।

४. जरूरत पड़ने पर उसके पास कोई जमा नहीं है, जो लगा सके । पहले जमानेमें उसकी औरतके गहने उसके लिए बैंकके समान थे । अब वह गहने भी नहीं बनवा सकता ।

५. लगान या मालगुजारी देनेके समय उसे लाचार होकर साहूकारसे कर्ज लेना पड़ता है, और खेत रहन रखना पड़ता है । किसानों पर लगभग आठ अरबके कर्ज लदा हुआ है ।

६. आये दिनकी मुकदमेबाजीसे किसान परेशान रहता है, और अधिक-से-अधिक लुटता जाता है ।

७. गांजा, ताड़ी शराबकी कुटेवमे फंसता है, और तन-मन-धन और धर्म सब खो देता है ।

८. शादी-गमी, काम-काजमें वह अपनी हैसियतसे ज्यादा खर्च करता है, और कर्जसे लद जाता है ।

९. वह अपने लिए जरूरी कपड़े भी नहीं खरीद सकता । उसकी खरीदनेकी ताकत बहुत कम होगई है ।

१०. काबुली, बलूची, पठान और दूसरे व्यापारी उसे जाड़े-के शुरूमें दूने-तिगुने दामों पर उधार कपड़े देकर ठगते हैं, और जाड़ा बीत जाने पर बड़ी कड़ाईसे वसूल कर लेते हैं ।

११. खेतीके और सामान भी वह नकद नहीं खरीद सकता । उधारके कारण उसे बहुत ठगाना पड़ता है ।

१२. खेतकी उपज दिन-दिन घटती जाती है । वह उपज बनाये रखनेके लिए उपाय नहीं कर सकता ।

१३. लगानकी दर इतनी ऊंची है कि आधेसे ज्यादा खेतका मुनाफा निकल जाता है, और उसे अपनी लागतका खर्चा और उसपरका सूद मुश्किलसे मिलता है । फसल अच्छी न हुई तो वह भी गया ।

१४. वह कांग्रेसका चंदा नहीं दे सकता, और अपना प्रतिनिधि कांग्रेसमें नहीं भेज सकता ।

१५. गांवमें शिक्षा, रक्षा और मन-बहलावके लिए जो उपाय वह पहले कर सकता था, अब नहीं कर सकता ।

१६. बुढ़ापेके लिए और अनारथों और विधवाओंके लिए कोई बंदोबस्त नहीं कर सकता ।

१७. आग लगने पर, बाढ़ आने पर और ओले पड़ने पर वह कोई उपाय नहीं कर सकता । बीमेके लिए उसके पास धन कहां है ?

१८. उसकी औसत आमदनी छः पैसे रोज है । इतनी थोड़ी आमदनी पर वह आधा पेट मुश्किलसे खा सकता है, और जरूरतोंकी कोई चरचा नहीं ।

१९. वह सालमें औसत छः महीनेतक बेकार रहता है । उस बेकारीकी दशाको 'फुरसत' नहीं कह सकते । दरिद्रताके कारण इससे फुरसतका सुख वह नहीं उठा सकता ।

२०. उसके अनेक रोजगार छिन गए हैं । विदेशियोंकी चढ़ा-ऊपरीसे, विदेशी सरकार होनेके कारण उसके रोजगारोंकी रक्षा होनेके बदले विनाश हो गया है । कपासकी खेती, ओटना, धुनना, कातना, बुनना बंद हो गया है । खंडसालें बंद हो गई हैं, गोचर-भूमिके खेत बन जानेसे और जीते हुए गाय-बैलके मुकाबलेमें चमड़ा, मांस, चर्बी, हड्डी, सींग आदिसे ज्यादा दाम मिलनेके

कारण गोवंशका नाश हो गया, और ग्वालोंका रोजगार चौपट हो गया। ये सारे रोजगार नष्ट हो जानेसे किसानके आधे जीवनकी बेकारी पर मोहर लग गई।

किसानकी माली हालत लिखने लायक नहीं है। देखनेको आंखें नहीं रह गई हैं। सोचनेसे कलेजा मुंहको आता है। इस माली हालतको हम शून्य नहीं कह सकते। यह शून्यसे इतना कम है, कि आठ अरब रुपयोंके आगे ऋणका एक बहुत मोटा-सा चिह्न लगा हुआ है। यह माली हालत दरिद्रताके कारण नहीं है, बल्कि सारी दरिद्रताका कारण है।

६. धर्म पर प्रभाव

धनका उपभोग करते हुए जो आदमी संसारको असार समझ कर उसका त्याग करता है वह विरक्त कहलाता है, परंतु संसारमें विरक्त बहुत थोड़े हैं और होने भी चाहिए। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी संसारमें थोड़े ही होते हैं। सबसे ज्यादा संख्या संसारमें गृहस्थोंकी होनी चाहिए, जिनसे बाकी सबका पालन-पोषण होता है। धर्मकी सबसे अधिक जिम्मेदारी गृहस्थों पर आती है। भारतीय किसान किसी समय बड़ा ही धार्मिक था। उसके द्वारसे मंगन निराश होकर नहीं लौटता था। होम, जप, तीर्थ, पूजा, त्यौहार और उत्सव उसके जीवनके अंग थे। संसारमें उसके बराबर सफाईसे रहनेवाला कोई न था। उसकी ईमानदारी और सचाई जगत्में प्रसिद्ध थी। वह अपनी बात पर मर मिटता था। उसके यहां स्त्री-जातिका पूरा सम्मान था। पराई स्त्रीको मां, बहन, बेटी समझता था। नशेबाजीकी तरफ कभी आंख उठाकर भी न देखता था। जहां संसारके किसान मांस खानेके लिए पशु पालते थे, वहां भारतीय किसान अहिंसा—किसी प्राणीका जी न दुखाना और प्राणिमात्रसे अपना आपा समझकर

रूपसे और पशुओंकी साधारण रीतिसे रक्षा करता था। हम यह नहीं कहते कि भारतमें मांस खानेवाले न थे। परंतु संसारमें और देशोंके मुकाबले हमारे देशमें मांस खानेकी चाल बहुत कम थी, और इस कमीके कारण हमारे यहांके किसान ही थे। परंतु आज क्या दशा है? दरिद्रताके कारण धर्म-बुद्धि नष्ट हो गई, और सदाचारके बदले कदाचारने अपनी हुकूमत जमाई। दरिद्रताके कारण—

१. वह आवश्यक दान नहीं कर सकता।

२. तीर्थाटन नहीं कर सकता।

३. व्रत, होम, जप आदि भी नहीं कर सकता।

४. पूजा आदि नहीं कर सकता। और इन कामोंमें शिथिलता आनेसे उसके मनसे धीरे-धीरे श्रद्धा उठ गई, इसलिए वह मंदिरों-में दर्शनो और जल चढ़ानेके लिए बहुत कम जाता है।

५. खेतीके संबंधमें होनेवाले अनेक यज्ञ वह नहीं करता।

६. पुरोहितोंकी रोजी उनका मान कम होनेसे बहुत करके जाती रही।

७. कथा-पुराणसे उसे बड़ी शिक्षा मिलती थी, परंतु व्यास-को दक्षिणा देनेके लिए अब उसके पास कुछ नहीं है।

८. मंदिरों और शिवालयोंकी दशा अश्रद्धाके कारण खराब है। आजकलके सुधारक संप्रदायोंने जो धार्मिक खर्च घटा दिया है, केवल इसी कारण वह बिना धार्मिक संप्रदायोंमें सम्मिलित हुए, उनकी किफायती रीति बर्तने लगा है। धार्मिक बातोंमें उस-पर किसीका दबाव नहीं है। सामाजिक बातोंमें समाजके दबावके कारण ही काम-काजमें बहुत खर्च करनेको लाचार हो जाता है।

९. गांवमें अब पुरोहितका होना जरूरी नहीं रह गया है।

१०. धार्मिक मेलों और पूजाओंमें दिन-पर-दिन इकट्ठे होने वालोंकी गिनती घटती जाती है।

११. मेलोंमें जाकर वह केवल धार्मिक काम नहीं करता था। वह मनबहलाव भी करता था और पशु और अपने खेतीके सामान आदि भी खरीदता था। पर आज पैसे बिना उसका मेला फीका है।

१२. वह मुकदमाबाजीमें फंसकरकर धूर्त, झूठा, दगाबाज और बेईमान हो गया।

१३. उसे अपने स्वार्थके लिए आज हत्या करने, आग लगाने, जहर देने आदि पापोंसे हिचक नहीं है। वह भूखके मारे खूंखार होगया है। किसीका दिल दुखाना उसके निकट कोई पाप नहीं रह गया है। देखनेमें वह अहिंसक अब भी है, परंतु उसका कारण प्रेमभाव नहीं है। उसका कारण है, उसकी अत्यंत कमजोरी।

१४. किसानका अंतरात्मा अभीतक जीता नहीं गया है। वह अब तक उसे बुरे कामोंसे रोकता है, परंतु वह अंतरात्माका शब्द न पुननेके लिए अपनेको तमाखू, भांग, गांजा, अफीम, ताड़ी, शराब आदि नशोंसे बेहोश कर लेता है, और तब दुराचारमें लगता है।

१५. वह व्यभिचारी हो गया है, और स्त्रियोंका उसकी तिगाहोंमें पहलेका-सा सम्मान नहीं रह गया है।

१६. स्त्रियांबेचारी उसकी पूरी अवस्था नहीं समझती, और कुछ दरिद्रता और कुछ अशिक्षाके कारण उसकी पूरी सहायता नहीं कर सकती। आये दिन घरमें झगड़े होते रहते हैं, और उनका निरादर होता है।

आजकल नास्तिकताके जमानेमें धर्मके ह्रासकी इस गिनती पर अनेक पंडितम्मन्य पाठक मुस्करायेंगे। परंतु जहांतक लेखकको मालूम है, रूसको छोड़कर संसारके सभी देशोंमें किसानके कल्याणके लिए उसमें धार्मिकता और नैतिकताका भाव आवश्यक

समझा जाता है। हम सांप्रदायिकताके विरोधी हैं, परंतु धार्मिकता-को राष्ट्रीयताका आवश्यक अंग समझते हैं।

१०. कला पर प्रभाव

कला तो सब तरहके सुख और समृद्धि पर निर्भर है। जहां पेट भर खानेको नहीं मिलता, वहां तो कलाकी चर्चा ही वृथा है। ऐसा भी कोई न समझे कि कलाकी जरूरत ही नहीं है। मन-बहलाव और व्यायाम—सामाजिक शिष्टाचार, मेले-तमाशे और मनोरंजनकी सारी सामग्री कलामें शामिल है। इन सब बातोंका आदमीकी आयुकी कमी-बेशी पर प्रभाव पड़ता है। दरिद्रता-के कारण—

१. खेल-कूदका सब तरहसे अभाव हो गया है। बड़े तो खेलको भूल ही गए हैं। भूखे पेट खेल क्या होंगे ?

२. बच्चे भी भूखों बिल्लाते हैं, कबड्डी आदि खेलनेको इकट्ठे नहीं होते।

३. बालजीवन सुखमय नहीं है।

४. बच्चोंको खिलौने नहीं मिलते।

५. मेले-तमाशे बहुत कम होते हैं।

६. पैदल दूरकी यात्रा करनेका हौसला नहीं है, क्योंकि खानेको नहीं है, और मार्गका सुभीता नहीं है।

७. शामको कथा-वार्ता नहीं होती, क्योंकि लोग न शिक्षित हैं और न अनुभवी।

८. लोगोंके जीवनमें रस नहीं रहा, लोग फूलके पेड़ नहीं लगाते, गमले नहीं रखते और घर-द्वार संवारनेका शौक नहीं रहा।

९. स्त्रियोंको चौक पुरने और भीत पर चित्र लिखनेका शौक नहीं रहा।

१०. तीज-त्योहारों पर गाने-बजानेका शौक घट गया है, दीवाली और फागमें अब वह पहलेकी-सी उमंग नहीं है।

११. संसारकी वस्तुओंके सौंदर्यकी ओर ध्यान कम है, गाने-बजानेका रिवाज घट गया है।

१२. अपने शरीरको सुंदर और स्वच्छ रखनेकी ओर ध्यान नहीं है, और हृष्ट-पुष्ट बनानेका हौसला नहीं है।

१३. जीवनकी गाड़ीको घसीटकर मौतकी मंजिल तक किसी तरह पहुंचाना ही कर्तव्य मालूम होता है।

वैराग्यमें भी ऐसा निर्वेद हो जाता है कि आदमी सांसारिक जीवनमें कोई रस नहीं पाता और ऊबकर परमात्मामें चित्त लगा लेता है। परंतु वह बात दूसरी है। किसान भी अपने जीवनसे ऊब गया है, परंतु इसलिए नहीं कि उसका चित्त परमात्मामें लग गया है। उसके निर्वेदका कारण भक्ति नहीं है, उसका कारण है भूख। जो जीवनकी सबसे बड़ी जरूरत है—अर्थात् भोजन, वही उसे लाख जतन करने पर भी नहीं मिलता। भारत का किसान आजकल कुराज्यके प्रभावसे नरक-यातना भोग रहा है।

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी,

सो नप अवसि नरक अधिकारी।

अच्छे राजाको प्रजा प्यारी होती है, क्योंकि प्रजा (प्रकृति)-को प्रसन्न रखनेसे (रञ्जनात्) ही राजा कहलाता है। विदेशी राजा को यहांकी प्रजा उसी तरह प्यारी है जिस तरह मांस खानेवालेको बकरी। परंतु विदेशी हुकूमतकी नीति उसीके लिए अंतमें घातक है। मुर्गीसे एक सोनेका अंडा नित्य लेना लाभकारी है। मारकर सब अंडे एकसाथ ले लेना, अथवा अंडेदेने की ताकतको नष्ट कर देना, बुद्धिमानीका काम नहीं है। विदेशी हाकिमोंमें अंधे स्वार्थके मुकामबिले दूरदर्शिता अधिक होती तो वे अपनी सारी कोशिश इस बातमें लगा देते कि भारतकी खरीदारी-

की ताकत नित्य बढ़ती जाय, और हमारा माल खपता जाय । वे अपने यहांके स्वार्थी सिविलियनोंके द्वारा भारतके धनको फिजूलखर्चीमें न लगाते । भूमि-कर बहुत हलका लेते । किसान सुखी रहता, वह विलायतका बहुत अच्छा ग्राहक होता, और इस तरह विलायतके माल तैयार करनेवाले शायद आजकलसे अधिक धन खींच ले जाते । शुद्ध और सच्चे व्यापारीकी नीति बुरी नहीं है, परंतु बेईमान और ठग व्यापारियोंकी नीति अंतमें उन्हीके लिए घातक होती है । इस बड़ी किसानके भिर पर दरिद्रताका बोझ असह्य होगया है । दम नाकोंमें आगया है । एक-एक क्षणकी देर उनके लिए दूभर है । उनकी खरीदारीकी ताकत नष्ट होजानेसे देशका भीतरी व्यापार भी बुरी दशामें है । दरिद्रताकी दशामें पाप और व्यभिचार का परनाला देहातोंसे बह-बहकर चारों ओर-से शहरोंमें आकर सिमटता है, जहां बस्ती घनी है और आदमी व्यसनी हैं । फल यह होता है कि दरिद्र देहातोंसे घिरे हुए शहर गंदगीकी खान होजाते हैं ।' शहरवालों पर प्रत्यक्ष कर कम

१. मिस मेयोने अपनी अमर अपकीर्ति "मदर इंडिया"में जो भारतके गंदे चित्र खींचे हैं उनकी अत्युक्तिको भी हम सच मानलें तो वह विदेशी शासनकी घोरतम निंदा होजाती है । इसके लिए मिस मेयोके ही देशके खेतीके संपत्तिशास्त्रके भारी-भारी विद्वान् और प्रामाणिक लेखक एक स्वरसे यही कहते हैं कि दरिद्रताके कारण सभी तरहके पातक और गंदगियां होती हैं, जो शहरोंको भी खराब कर डालती हैं । इनके महाकारण—अर्थात् दरिद्रता—के लिए देशकी सरकार ही जिम्मेदार होती है । जो पाठक स्वयं इस विषयको देखना चाहें वे इन प्रमाणोंको स्वयं पढ़ लें—1. Articles Contributed by Richard T. Ely, and Director of the institute for Research in Land Economics and Public Utilities,

लगे हुए हैं, उनकी दशा इसीलिए कुछ अच्छी है । इसीलिए वे व्यसनोंमें सहज ही फंस जाते हैं । साथ ही यह बड़े दुःखकी बात है कि किसानोंकी गाढ़े पसीनेकी कमाई उन शहरोंको सजाने और सब तरह सुखी बनानेमें विदेशी सरकार आसानीसे खर्च कर देती है, जिनसे असलमें किसानोंको लाभ नहीं होता । एक ओर तो करोड़ों किसान दाने-दानेको तरसते हों, और दूसरी ओर १४ करोड़ रुपये लगाकर बिना आवश्यकताके नई दिल्लीके महत्त्व बनते हों, यह हृद दर्जेकी निठुराई है । शहरोंमें पानीके बंदोबस्तके लिए या विजलीका बंदोबस्त करनेके लिए रुपये पानीकी तरह बहा दिये जाते हैं । किसानका बोझ हलका करनेके लिए एक अंगुली भी नहीं उठाई जाती ।

हमने ऊपर विस्तारसे दरिद्रतासे पैदा होनेवाले दोष दिखाये हैं । एक दरिद्रता दूर हो जाय, तो ये सारे दोष दूर हो सकते हैं । सुधारक लोग हर दोषको दूर करनेके लिए अलग-अलग उपाय करते रहते हैं, पर उन्हें सफलता नहीं होती । जगह-जगह पैबंद लगानेसे काम नहीं चलता । पत्ते-पत्ते पर जल देनेसे पूरे पेड़का पोषण नहीं हो सकता । या तो विदेशी सरकार इस दरिद्रताको दूर करे या भारतकी प्रजा इस दरिद्रताको पैदा करनेवाली

२. O. F. Hall, Professor of Sociology, Purdue University.

३. John A. Ferrell, M. D. International Health Board, and

४. C. E. Allred, Professor of Agricultural Economics, University of Tennessee,

in "Farm income & Farm Life" published by the University of Chicago Press, 1927, Pages 155-189

A. w. Hayes: *Rural Sociology*. Longmans, Green & Co. : 1929 Chap XVIII. P. P. 430-457

सरकारको दूर करे और अपना बंदोबस्त आप ही करके अपनी पुरानी सुख-समृद्धिको लौटा लावे ।

: १२ :

और देशोंसे भारतकी खेतीका मुकाबिला

१. सुधारकोंकी भूल

भारतकी खेतीकी दशा अत्यंत गिरी हुई है, इस बातसे किसी-को भी इंकार नहीं है, परंतु जो लोग सुधारके उपाय बताते हैं वे अक्सर जापान और योरपका नमूना पेश करके चाहते हैं कि हमारा देश भी इन्हीं देशोंकी तरह उन्नतिके उपाय करके कम-से-कम समयमें सुखी और समृद्ध हो जाय । वे देखते हैं कि हमारे संयुक्त-प्रांतमें गेहूं सींचे हुए खेतमें १२ मन प्रति एकड़ और बिना सींचे हुएमें ८ मन प्रति एकड़ पैदा होता है । वही कनाडामें १३ मन और जर्मनीमें १७ मन होता है । इंग्लिस्तानमें एकड़ पीछे भारतका दूना होता है । परंतु वे इस मुख्य बातको बिलकुल भूल जाते हैं कि इनमेंसे किसी देशमें विदेशी राज नहीं है । किसी देशका धन चूसकर पराये देशमें नहीं चला जाता, अपने देशकी सरकार तन, मन, धनसे अपने देशके ही हितमें लगी रहती है । जिस दिन सरकार और प्रजामें हितका विरोध होता है, प्रजा तुरंत सरकारको बदल देती है । फिर इन देशोंमें सुधारके होनेमें देर क्यों लगे ? इसमें संदेह नहीं कि खेतीकी कलामें संसारमें किसी समय भारत सबसे आगे था, परंतु आज विदेशी हुकूमतकी बदौलत सबसे पिछड़ गया है । जो मूल-कारण उसके पिछड़ जानेका है उसके होते अपनी खोई दशाको पा जाना कैसे संभव है ? फिर भी इस प्रकरणमें सुधारकोंकी शंकाओंके समाधानके लिए हम कुछ देशोंसे मुकाबिला करेंगे । खेतीके संबंधमें अमेरिका संसारमें सबसे बढ़ा-चढ़ा समझा जाता है । पहले हम अमेरिका पर विचार करेंगे ।

२. अमेरिकाकी खेती

‘अमेरिका’ साधारण बोलचालमें अमेरिकाके संयुक्तराज्यों-को कहा जाता है। किसी जमानेमें, जिसको आज तीन सौ बरस-के लगभग हुए, इंग्लिस्तानमें किसानों पर अत्याचार होने लगे थे, और ईसाइयोंके ‘भाई संप्रदाय’ पर उनके भाई ईसाई तरह-तरह-के जुल्म ढाने लगे थे। उस समय ‘भाई संप्रदाय’ वाले हजारों परिवार पहले-पहल हालके मालूम किये हुए महाद्वीप अमेरिकामें चले गये और बस गए। जिस प्रदेशमें बसे उसका नाम ‘नया इंग्लिस्तान’ रक्खा। उसके बाद अपना देश छोड़-छोड़ सताये हुए कुटुंब अमेरिकामें जाकर बसने लगे। धीरे-धीरे ‘नये इंग्लिस्तान’-की तरह अनेक नये उपनिवेश बन गए, जिनमें अंग्रेजी बोलनेवालों-की संख्या ज्यादा थी। इसीलिए ये सभी उपनिवेश अंग्रेजोंकी जाय-दाए बन गए और ब्रिटेन उनसे लाभ उठाने लगा। जब धन चूसने-की क्रिया अपनी हदको पहुंच गई तब वहां स्वदेशी और बहिष्कार-का आंदोलन चला, और अंतमें स्वतंत्रताका युद्ध हुआ, जिसमें इंग्लिस्तान एक तरफ था और बहुत-से संयुक्तप्रदेश वाशिंगटनके नेतृत्वमें दूसरी तरफ थे। अंतमें वाशिंगटन विजयी हुआ और संवत् १८२३में ये संयुक्त राज्य स्वतंत्र हो गए। इस तरह इनको स्वतंत्र हुए डेढ़ सौ बरस हो गये। मोटेतौरसे यों समझना चाहिए कि उन्हें स्वतंत्र हुए जितना समय बीता, हमें परतंत्र हुए भी उतनाही समय बीता है। साथ ही मशीनोंकी उन्नतिका आरंभ हुए भी लगभग ७५ बरस बीते हैं, और लगभग ६० बरस पहले अमेरिकाकी खेती प्रायः उतनी ही उपजाऊ थी जितनी आज भारतवर्षकी खेती है। स्वतंत्र अमेरिकाको इस तरह अपनी वर्तमान उन्नत दशाको पहुंचानेमें ६० बरस लगे हैं। भारतवर्षकी बात जाने दीजिए, क्योंकि वह पराधीन है। परंतु इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, रूस तो अमेरिकासे पहलेके स्वतंत्र देश हैं, परंतु उन्होंने

भी उतनी उन्नति नहीं कर पाई है जितनी अमेरिकाने की है। इसका कारण क्या है। अमेरिकाकी परिस्थिति पर विचार करनेसे इस संवालका जवाब मिल जायगा।

अमेरिकाकी आबादी प्रायः गोरोंकी है, वह शहरोंवाला देश है। उसका क्षेत्रफल ३०,१३,००० वर्गमील है और आबादी साढ़े ग्यारह करोड़ है। इस तरह वहां मील पीछे आज २८ आदमीके लगभग बसते हैं। भारतवर्षका क्षेत्रफल १३ लाख वर्गमीलके लगभग और आबादी पैंतीस करोड़के लगभग है। इस तरह यहां वर्गमील पीछे २६६ आदमी बसते हैं। इस तरह भारतवर्षकी वस्ती लगभग सात गुना ज्यादा घनी है। किसानोंकी आबादी भारत-वर्षमें तीन-चौथाई है, और जितने लोग खेतके सहारे गुजर करते हैं वे सैकड़ा पीछे नव्वेके लगभग हैं। इस तरह अकेले किसानोंकी आबादी अगर ली जाय तो मील पीछे हमारे देशमें २५४ किसान बसते हैं। यह बात बिल्कुल प्रत्यक्ष है कि हमारे यहां अमेरिकाके मुकाबिले खेतीके लिए धरती कम है और खेतीके सहारे जीनेवाले अत्यधिक हैं। संवत् १९७८ की मर्दुमशुमारीमें खेती करनेवालोंकी गिनती बाईस करोड़ साढ़े नव्वे लाखके लगभग थी। कुल जमीन जिसमें खेती होती है, लगभग साढ़े बाईस करोड़ एकड़के है। इस तरह भारतमें किसानोंके सिर पीछे मुश्किलसे एक एकड़की खेती पड़ती है। संवत् १९६६ में अमेरिकामें किसानोंके पास सिर पीछे औसत ५५ एकड़के खेत थे और सिर पीछे २० एकड़ धरती। वहां किसानोंकी गिनती धीरे-धीरे घटती जा रही है। संवत् १९०७ में कुल आबादीके ६३ प्रति सैकड़ा किसान थे, संवत् १९७७ में आबादी २६ प्रतिशत हो गई है। इतनी उन्नति होते हुए भी वहां किसानोंकी संख्या क्यों घटती जाती है? इसलिए कि उद्योग-व्यवसायके मुकाबिलेमें खेतीकी आर्थिक स्थिति बराबर गिरी हुई रहती है। “इसका अर्थ यह है कि

इस संसारकी बड़ी-बड़ी मंडियोंमें अमेरिकाके उद्योग-व्यवसाय-को बढ़ा-चढ़ा रखनेके लिए वहांकी खेतीका बलिदान करना पड़ेगा।”^१

भारतमें सिर पीछे जो एक एकड़की खेतीका औसत बैठता है उसमें भी छोटे-छोटे टुकड़े हैं और वे टुकड़े दूर-दूर पर हैं। अमेरिकामें सैकड़ों एकड़की इकट्ठी खेती एकसाथ है जिसकी जुताई बुवाईके लिए इकट्ठी मशीनोंसे काम लेनेमें कफायत होती है। यह बात तो प्रत्यक्ष है कि रोजगारका फैलाव जितने अधिक विस्तारका होगा उतनी ही अधिक लागत भी बैठेगी और उसी हिसाबसे मुनाफा भी ज्यादा होगा। यूरोपके स्वतंत्र देशोंमें भी जिन देशोंकी आबादी घनी है और किसानको सिर पीछे खेती करनेको कम जमीन मिलती है वहांके किसानोंने भी अमेरिकके किसानोंके मुकाबिले कम उन्नति की है, यद्यपि न तो उनके यहां भारतकी तरह औसत जोत इतनी कम है और न पराधीनता है और न उससे उपजा हुई चोर दरिद्रता।

इस बातको भी भूल न जाना चाहिए कि अमेरिका आदि देशोंके किसानोंको लगानके बढ़ने या खेतसे वेदखत हो जानेका उस तरहका डर नहीं है जिस तरह भारतमें है। खेतीकी सुरक्षा तो भारतके मुकाबिले उन उपनिवेशोंमें ही अच्छी है जहां गिर-मिटवाती गुलामी करने बहुत-से भारतीय गये और सुभीता देखकर वहीं बस गये और खेती करने लगे। विदेशोंकी-सी सुरक्षा यहां भी हो जाय तो पैदावार बढ़ सकती है।

अमेरिकामें पहले आबादी भी थोड़ी थी और मशीनोंकी चाल भी नहीं चली थी, तब वे अफ्रीकाके हबशियोंको गुलाम बनाकर ले गये और काम लेने लगे। विस्तारसे खेतीका काम

बिना कलके सहारे करनेके लिए बहुत ज्यादा आदमियोंकी जरूरत होती है, इसलिए वहां मशीनोंकी चाल चल जानेसे आदमियोंकी जरूरत घटती गई । पिछले साठ बरसोंमेंसे पहले तीस बरसोंमें अधिक काम मशीनोंके प्रचारने किया । यह प्रचार और शिक्षाका काम कृषि-विभाग करता रहा । विक्रमीकी बीसवीं अर्धशताब्दीके बीतते-बीतते अमेरिका वालोंका जो जोश ठंडा पड़ गया था वह धीरे-धीरे जगने लगा । पिछले तीस बरसोंमें यह जागृति जोरोंसे इसलिए होगई कि कच्चे मालकी दर बहुत जोरोंसे चढ़ने लगी और लोग खेतीकी ओर झुकने लगे, जिससे भय हुआ कि अन्न घट जायगा । तब फिरसे कृषि महाविद्यालय और कृषि-विभागकी जांचवाले दफ्तर खुल गए । आवाज उठी कि वैज्ञानिक प्रयोग किसान तक जबरदस्ती पहुंचाये जाने चाहिए । खेतीके विशेषज्ञ जिलेके एजेंट और खेतीके संवादपत्रों-ने इस कामको उठा लिया । रेलकी गाड़ियोंमें और मोटरोंमें सिखानेवाले और कर दिखानेवाले बैठकर गांव-गांवका दौरा करने लगे । हर तरहकी सरकारी सहायता बड़ी उदारतासे मिलने लगी । क्यों न हो; अपने देशकी खेतीके बढ़ानेकी बात जो थी । खेतीकी योग्यताके बढ़ानेके प्रश्न पर अमेरिकामें मनुष्यका जितना दिमाग और जितनी ताकत पिछले १५ वर्षोंमें लगाई गई है, इतिहासमें कहीं कभी नहीं लगाई गई थी । पंजाबके गुड़गांवके डिप्टीकमिश्नर मिस्टर ब्रेनने थोड़ी बहुत उसी ढंग पर कोशिशकी थी, परंतु उन्हें सफलता न हो पाई । कौवा चला हंसकी चाल, अपनी चाल भी भूल गया । अमेरिकामें जो काम होता है उसपर किसानोंका पूरा विश्वास है । यहां सरकारमें और किसानमें भेड़िया और भेड़का संबंध है । किसानोंको सरकारी अफसरोंका

विश्वास नहीं है। जो कुछ ब्रेन साहब कर पाये, वह अफसरीके जोम पर। उनकी नीयत बड़ी अच्छी थी, परंतु वह सरकारपनेका कलंक अपने व्यक्तित्वसे मिटा न सकते थे। उन्होंने ज्योंही पीठ फेरी, उनका सारा प्रभाव मिट गया और सुधारकी दशा फिर ज्योंकी-त्यों हो गई। बात यह थी कि उनके अधिकारमें मालगुजारीका बोझा घटाना नहीं था। वह बहुत कुछ शोरगुल करके रह गये, इसीलिए अधिक-से-अधिक वह भी पैबंद लगानेका काम ही कर सकते थे, और हम दिखा आये हैं कि जहां जड़ ही खराब है, वहां पत्ते-पत्तेकी सिंचाई काम नहीं दे सकती। वह चाहते थे कि सरकारकी ओरसे माली सहायता मिले, मालगुजारी कम की जाय, जंगल बढ़ाये जाय और किसानोंका उनपर अधिकार रहे।' लाट साहब हेलीने उनकी पुस्तककी भूमिका लिखी, परंतु व्यवहारमें ब्रेनके दिमागकी अबहेलना की।

अमेरिकामें जितने सुभीते हैं, उतने सुभीते जिस देशमें हो जायं उसी देशकी खेती दिन-पर-दिन बढ़ती जा सकती है। अमेरिकाके सुभीते संक्षेपसे ये हैं :—

(१) वह स्वाधीन राज्य है और वहां खेतीसे मिला हुआ कर देशके भीतर ही खर्च होता है।

(२) खेती पर किसानका सदैवका स्वार्थ है, उसे बेदखलीका या झजाफा लगानका कोई भय नहीं है।

(३) थोड़े-से-थोड़े करमें उसे ज्यादा-से-ज्यादा रक्षा मिलती है।

(४) जीवनकी जितनी जरूरी चीजें हैं वे उसके पास काफीसे ज्यादा है।

(५) उसके पास रोजगारका काम लगातार साल भरके लिए है,

१. F. L. Brayne. Village uplift in India, Pioneer Press, Allahabad, 1927. PP. 64-66, & 71.

और वह अपने लिए काफी कमाई करके फुरसतकी वडियोंका सुख भी लेता है ।

(६) सारे परिवारके लिए मन-बहलावका उपाय है और मेहनत करनेके बाद निश्चय उसे मन-बहलावका सुभीता मिलता है ।

(७) खेतीके संबंधकी सब तरहकी शिक्षाके सुभीते उसे मिलते हैं ।

(८) सफाई, मकान और तंदुरुस्तीकी रक्षाके सारे उत्तम उपाय उसे प्राप्त हैं ।

(९) बाहरकी आमद-रफ्त पत्र-व्यवहार और व्यापारके सब तरहके सुभीते उसे मिलते हैं ।

(१०) जैसे उसका सारा देश स्वराज्य है उसी तरह उसका गांव या बस्ती उस महास्वराज्यका एक स्वाधीन टुकड़ा है ।

(११) उसके केंद्रीय स्वराज्यसे उसकी बस्तीका संबंध उसकी बस्तीके लिए सर्वथा हितकर है ।

हमने जान-बूझकर मशीनके सुभीते और इकट्ठी बड़े रकबेकी खेती ये दोनों बानें शामिल नहीं कीं । हमारे देशमें बड़े रकबे मिल नहीं सकते और जो लोग आजकल मशीनोंके चमत्कारको देखकर उनपर हजार जानसे फिदा हो रहे हैं हम उन्हें यह याद दिलाना चाहते हैं कि जो मशीन दो सौ आदमियोंकी जगह केवल एक आदमीको लगाकर काम कर सकती है वह एकसौ निन्यानबे आदमियोंको बेकार भी रखती है । ऐसी मशीनोंकी जरूरत वहां पड़ सकती है जहां आदमी कम हों और काम ज्यादा हो । हमारे देशमें इसका बिल्कुल उल्टा है । आज तो हमारे यहां आदमी ज्यादा हैं और उनके लिए काफी मजूरी नहीं है । इसके सिवा मशीनोंका काम बड़े पैमानोंपर होता है । हमारा देश ऐसी स्थितिमें है कि खेतीका काम बड़े पैमानेपर नहीं हो सकता । इस रोजगार-को बड़े पैमानेपर करनेमें भी भारतकी जनताकी हानि है । जिस तरह कपड़ेका कारोबार बड़े पैमानेपर होनेसे भारतमें बेकारीका

रोग फैल गया, उसी तरह खेतीका कारोबार भी बड़े पैमाने पर होनेसे बेकारी बढ़ती ही जायगी । यदि संपत्तिशास्त्रको संसारके कल्याणकी दृष्टिसे देखें और परस्पर लूटनेवाली राष्ट्रीयताका दुर्भाव हटावें तो हमें यह कहना पड़ेगा कि कलोंका प्रयोग वहीं तक कल्याणकारी है, जहांतक वह अधिक-से-अधिक मनुष्योंको काम और दाम देकर अधिक-से-अधिक अच्छाई और मात्रामें माल तैयार कर सके । हम ऊपर प्रमाणके साथ यह दिखा आये हैं, कि ऐसे उत्तम सुभीतेके रहते भी किसानोंकी गिनती घटती जाती है और अधिक लोग संसारको लूटनेवाले उद्योग-व्यवसायकी ओर चले जा रहे हैं । मिलकी मायासे मोहित मनुष्य इस भूठी कल्पनामें उलझे हुए हैं कि औद्योगिक लूट बराबर जारी रहेगी और लूटनेवाले संसारी जीव जगकर इस लूटका द्वार कभी बंद न कर सकेंगे, परंतु यह भारी भ्रम बहुत कालतक न रह सकेगा ।

फिर भी अमेरिकासे हमको जो बातें सीखने लायक हैं हम जरूर सीख लेंगे । हम जितने सुभीते गिना आये हैं, भारतके लिए हम वे सभी सुभीते चाहते हैं ।

वर्तमान समयमें हम मोटरोंपर चलनेवाले किसानों और मजूरोंकी तरह अपने यहांके किसानों और मजूरोंको विमानोंका भोग-विलास करते देखनेकी स्पर्धा नहीं रखते । “भोजन सादा हो परंतु भरपेट मिले, और पशुओं और अतिथियोंतकके खिलानेके लिए बच जाय । भरसक खेतोंकी ही उपज हो, मोटा चाहे कितना ही हो और भांति-भांतिका चाहे न भी मिल सके । खहर सस्ता हो जिससे शरीरकी रक्षा हो सके और सर्दीसे बचाव हो, चाहे महीन, मुलायम और सुंदर न हो परंतु जरूरतसे किसी तरह कम न हो । छायाके लिए मकानियत काफी हो, चाहे उसमें सजावट और सुघराई न हो तो भी सफाई पूरी रह सके । बहुत थोड़े खर्चमें शिक्षा मिले, पुस्तकें मिलें और सब तरहके मनबहलावका

सामान हो जाय । सामाजिक काम भी बिना बाधाके हो सकें । जोखिमोंका बीमा भी होता रहे और धरतीपरके जीवनके लिए और भी कुछ थोड़ी-बहुत बे-जरूरी बातें भी सुलभ हों । संसारके अधिकांश किसानोंको इससे ज्यादा सुभीते नहीं हैं । अधिक लोगोंको तो असलमें इनसे बहुत कम है । यह एक बहुत दिनोंसे पक्की बात है कि पीढ़ियां-पर-पीढ़ियां गुजरती गई हैं, और जीवनके इन परिणामोंसे संतुष्ट रहकर वे केवल किसान ही नहीं बने रहे बल्कि जितना हमें चाहिए था उतनेसे अधिक उपजाते भी रहे । इससे बढ़कर इस बातकी कोई गवाही हो नहीं सकती कि जीवनके इससे अधिक परिमाणोंकी असलमें जरूरत न थी, या यों कहना चाहिए कि खेतीकी परिस्थितिमें इससे ऊंचे परिमाणकी रक्षा नहीं की जा सकती थी ।” हम उस सादगी को ज्यादा पसंद करते हैं जिसमें कि ईमानदारीसे रहकर किसान अपने आत्मिक जीवनकी पूरी ऊंचाई तक उभर सके । वह विज्ञापनबाजीके फंदोंमें न फंसे, सूचीपत्रोंसे अपनेको न ठगावे, ठगोंकी तस्वीरों और मोहिनी बातों पर लुभा न जाय । इशितहारी रोजगारोंका शिकार न बने, और विलासितामें न फंसे । अमेरिकाके किसानोंके ये थोड़ेसे दोष हैं जिनसे बचना होगा । दलाली, मुकदमेबाजी, जुआ, नशा, आलस्य, गुंडापन, व्यभिचार आदिसे, जो हमारे किसानोंमें दिन-पर-दिन बढ़ते चले जा रहे हैं, उसे बचना होगा ।

३. डेनमार्ककी खेती

संसारमें अमेरिकाकी खेती सबसे बड़ी-चढ़ी है, परंतु जैसा हम देख आये हैं यह उन्नति हालकी ही है । अमेरिकाने अपने

१ Alexander E. Cance, Professor of Agricultural Economics Massachusetts Agricultural College, in "Farm Income and Farm Life," The University of Chicago Press, New York, 1927. P. 78.

कृषि-विभागकी जानकारी बढ़ानेके लिए कृषि-विज्ञानके बड़े-बड़े विद्वानोंको यूरोपके भिन्न-भिन्न देशोंमें पर्यटन कराया । यूरोपमें खेतीके व्यवसायमें अमेरिका वालोंने डेनमार्कको सबसे अधिक बढ़ा-चढ़ा पाया, और अनेक बातें इस छोटेसे देशसे सीखीं ! यों कहना भी अनुचित न होगा कि जब हम डेनमार्ककी चर्चा करते हैं तो असलमें उस देशकी चर्चा करते हैं जो अमेरिकाके लिए भी आदर्श है । इस तरह समझना चाहिए कि संसारमें खेतीकी उन्नतिके लिए डेनमार्क ही सबसे उत्तम आदर्श है । यूरोपके 'लीग ऑफ नेशंस' (राष्ट्रसंघ)की ओरसे (दी रूरल हाईजीन इंटर चेंज) कृषि-स्वास्थ्य—परस्पर-विनिमय विभागने स्वास्थ्य-संगठन पर कई उपयोगी पुस्तिकायें निकलवाई हैं । डेनी सरकारके खेतीके विभागके मंत्री श्री एस० सोरंसेने डेनी खेती पर एक बड़ी अच्छी पुस्तिका लिखी है । उसकी भूमिकामें डाक्टर बूद्रोने लिखा है, कि जहांकी आर्थिक दशा बहुत अच्छी और पक्की नींव पर जमी हुई नहीं है वहां तंदुरुस्तीकी रक्षाके लिए उपाय नहीं किये जा सकते । तात्पर्य यह है कि जिन राष्ट्रोंको स्वास्थ्य-रक्षा पूरी तौर पर मंजूर हो वे अपनी आर्थिक दशा सुधारें, और डेनमार्ककी तरह खेती और किसानोंकी उन्नति करें । स्वास्थ्य-विभागने इसीलिए कृषि-विभाग संबंधी पुस्तिका छपवाई है । इस प्रसंगमें हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि पिछले पृष्ठोंमें हमने जो दरिद्रताका संबंध रोगों और मौतोंकी बढ़ी हुई संख्यासे दिखाया है वह संसारमें निर्विवाद बात मानी जाती है ।

परंतु डेनमार्क खेतीमें जितना ही बढ़ा-चढ़ा हुआ है, उतना ही विस्तारमें छोटा है । यह समुद्र तट पर बसा हुआ केवल १६,५३६ वर्गमीलका क्षेत्रफल रखता है । उसकी आबादी ३४,६७,००० प्राणियोंकी है । इस देशसे क्षेत्रफलके हिसाबसे भारतका अवध प्रांत डबोड़ा बड़ा है, और पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत बराबर है ।

भारतमें इससे छोटे प्रांत दिल्ली और अजमेरके हैं। आबादीमें सीमाप्रांतका ड्योढ़ा है, और सिंध प्रांतसे कुछ कम है। अमेरिकाके मुकाबिलेमें यहांकी आबादी ज्यादा घनी है। ये अंक हमने संवत् १९८५के दिये हैं। डेनमार्कमें देहातोंकी आबादी सैकड़ों पीछे ५७ है। इसमेंसे सभी खेती नहीं करते। खेतीके संबंधके सारे काम करने वालोंको गिनने जो किसानोंकी आबादी सैकड़ों पीछे ३३ ही ठहरती है। इनमेंसे खेतके मालिकोंके कब्जेमें १,७७,००० खेत हैं। पट्टे पर २,२०७ हैं। लगान पर ८,५५१ हैं। इस तरह कुल खेतीमें ६४ प्रति सैकड़ों लोगोंकी अपनी मिल्कियत है, बाकी ६ प्रति सैकड़ों पट्टे या लगान पर हैं। छोटे-से-छोटे खेत आठ एकड़ तकके हैं, परंतु सबसे बड़ी संख्या २५ एकड़वाले खेतोंकी है। उनके बाद ७५ एकड़वालोंकी संख्या लगभग उतनी ही है जितनी कि आठ एकड़वालोंकी संख्या है, इस तरह असलमें वहां थोक खेती ज्यादा है। किसानोंकी आबादीके हिसाबसे जितने क्षेत्रफल पर किसान अधिकार रखता है वह हमारे यहांसे कहीं ज्यादा है। सत्रह-सत्रह एकड़की जोतें छोटी जोतोंका औसत क्षेत्रफल समझी जाती हैं।^१ हमारे यहां जिनके पास १७ एकड़ खेत हैं वे १७ भिन्न-भिन्न जगहोंमें बटे हुए भी हैं। थोक-के-थोक इकट्ठे नहीं हैं। संवत् १९७७-७८ और ७९में वहां एकड़ पीछे लगभग १२०३ रुपये दाम देने पड़ते थे। जिन लोगोंके पास-छोटी-छोटी जोत थीं उन्हें बढ़ानेके लिए, और जिनके पास पट्टे थे या जो रय्यतकी तरह लगान पर खेत लेकर खेती करते थे, उन्हें खेतोंको खरीद लेनेमें वहांकी सरकारने बहुत कम ब्याज पर और उन खेतोंकी ही

१. 'Small Holdings in Denmark' by L. Th. Arnskov, Danish Foreign office Journal, [1924. (Dyioa and Jeppesen), Danish Agriculture (Statistics), The Agricultural Council of Denmark vestre Boulevard 4-Copenhagen V.

जमानत पर उधार रुपये दिये, और किसानोंको खेतोंका मालिक बनाया। यह उधारके रुपये भी वसूल करनेका ढंग ऐसा अच्छा रक्खा कि छोटी-छोटी किस्तोंमें साल-साल पर किसान लोग अदा करें, जिसमें कई बरसोंमें वह सरकारी उधार भी चुकता होजाय और किसानोंकी मिलियत भी पक्की पोढ़ी होजाय। डेनी सरकार-ने किसानोंके साथ केवल इतनी रिआयत ही न की बल्कि उनका संगठन करानेमें, सहयोग समितियोंके बनानेमें उनकी उपजको चोखा बनानेमें, और संसारकी मंडियोंमें, उनके मालके अच्छे-से-अच्छे दाम खड़े करानेमें पूरी मदद दी और कोई बात उठा न रक्खी।

बाहरके लोग यह देखकर आश्चर्य करते हैं कि डेनोंके देशकी समाई इतनी कम होने पर भी संसारकी मंडियोंमें एक-तिहाई मक्खन, एक-चौथाई सुअरका मांस, और दसवां भाग अंडे वह कहांसे लाकर बेचता है। श्री सोरंसेन इस रहस्यको थोड़े हीमें खोल देते हैं। डेढ़ सौ बरसके संगठन और घनी खेतीका यह फल है, और इतना कह देनेमें जरा भी गलतीका डर नहीं है कि डेनी किसान अपने काममें बड़े कुशल और शिक्षित हैं और उनका सामाजिक और मानसिक परिमाण बहुत ऊंचा है।

हमारा भी तो इन्हीं 'डेढ़सौ बरसोंका रोना है। जो देश स्वाधीन थे या स्वाधीन होगए, जैसे डेनमार्क और अमेरिका, उन्होंने उसी समय अपना संगठन और उत्थान आरंभ किया; उसी समय भारतके पांवोंमें बेड़ियां पड़ गईं, और उसके शरीरसे खून चूसकर बाहर जानेवाली जोकें लग गईं। डेनमार्ककी उन्नति-की बुनियाद भी बहुत पुरानी है। पुराने डेनमार्कमें उसी समय उसी तरहका ग्राम-संगठन था जैसा कि भारतमें। हरेक गांव एक प्रकारकी सहयोगी-समिति थी जिसमें गांवका हर आदमी शामिल था। वे अपना कानून खुद बनाते थे। उनकी कानूनकी किताबमें

खेती, पशुपालन आदिके नियम लिखे रहते थे । गांववाले साल भरके लिए या तीन सालके लिए अपना मुखिया चुन लेते थे । गांवमें हठी घास पर यही मुखिया सभा किया करता था । हर मंवरके बैठनेके लिए उसकी जायदादकी हैसियतके अनुसार मंच हुआ करता था । मुखिया काम शुरू करता था और फिर ऐसी बातें तय करली जाती थीं कि जोताई-बोवाई किस-किस दिनकी जायगी, घास कब कटेगी, फसल कब काटी जायगी, कौन कौनसे दरख्त कटेंगे और कब कटेंगे, ढोरोका क्या बंदोबस्त होगा, ग्वाले-को क्या दिया जायगा । इस तरहके छोटे-छोटे प्रश्नोंसे लेकर गांव-के सब तरहके बंदोबस्त इसी पंचायतमें होते थे । दीवानी और फौजदारी दोनों तरहके मुकदमोंके फैसले होते थे । जुर्माने होते थे और लिये जाते थे । ये पंचायतें बड़े अदब-कायदेसे होती थीं । कड़े अनुशासनसे काम लिया जाता था । पंचायती पाठशाला आदि पंचायतकी चीजें थीं । किसीके लड़का हो या न हो, पर हर गांववाला पढ़ानेवालेके भोजनके खर्चमें हिस्सा देता था । इसके सिवा हर पढ़नेवाला लड़का फीस भी देता था, जिससे मास्टरकी तनखाह निकलती थी । बहुत विस्तार करना व्यर्थ है, इतना कह देना काफी होगा कि हरेक गांव अपने स्थानीय स्वराज्यका उप-भोग करता था । परंतु इसके साथ-साथ एक दोष यह था कि जमींदारी और काश्तकारीका भी संबंध था और मजूरों और आसामियोंके साथ गुलामोंका सा बर्ताव होता था । परंतु इस प्रथामें धीरे-धीरे सुधार होने लगा, और पिछले पचास वर्षोंमें सुधारोंका वेग बहुत बढ़ता गया । जहां-जहां जमीन रेतीली थी और खेती नहीं हो सकती थी, वहांकी जमीनों पर जंगल लगा दिये गए । जहां-जहां हो सका पशुओंका चारा उपजाया जाने लगा । घासोंके उगनेकी जगह आलू, गाजर, शलजम आदि कंद-मूल उपजाये जाने लगे । बाज-बाज फसलें पांचवें, बाज छठवें

और बाज सातवें साल अच्छी होती थीं । अदला-बदली करके इस तरह पर वहां खेती होने लगी कि जिस साल जिस चीजकी उपज सबसे ज्यादा होनेवाली थी उस साल वही चीज बोई जाती थी । यह तो खेतीकी बात हुई, जिसमें कि उन्होंने ऐसी तरक्की की कि बढ़ते-बढ़ते एकड़ पीछे सोलह मन गोहूँ उपजाने लगे । डेनोंका गाहक पहले इंग्लिस्तान था, परंतु मंडीमें और मुल्कोंकी चढ़ा-ऊपरीसे डेनोंकी अनाजकी खपत कम होगई । उस समय डेन हताश नहीं हुए, वे गोवंशको पहले हीसे सुधार रहे थे । जब अनाजकी बिक्री कम हुई तो उन्होंने मक्खनका रोजगार करना शुरू किया, गायें पालीं और बछड़े भी पालने लगे । भारतमें बैल बड़े कामके जानवर हैं, खेती उन्हींके बल पर होती है; परंतु डेनमार्कमें दुलाई और जुताई आदिका काम घोड़ोंसे लेते हैं, इसलिए गोमांस-भक्षी अंग्रेज ग्राहकोंको वे बैलोंका मांस देने लगे । मांस, चर्बी आदिके लिए वे पहलेसे सुअर भी पालते थे, और अंडोंके लिए मुर्ग, बत्तक आदि भी रखते थे । इस तरह उन्होंने अनाजकी बिक्री घटने पर गोमांस, शूकर-मांस, चर्बी, चमड़ा, मक्खन, अंडे इत्यादिकी बिक्री बढ़ाई । इस बातमें डेनी-सरकारसे उन्हें बहुत बड़ी मदद मिली । आज सिवाय अनाजके इन सब चीजोंकी बिक्री डेनमार्ककी बहुत ज्यादा है । और ये सब चीजें खेतीकी उपज समझी जाती हैं । भारतवर्ष शायद ऐसी खूंखार तिजारतके लिए ठीक न होगा, परंतु हमारे देशकी शिक्षाके लिए वहांकी सबसे बड़ी चीजें दो हैं:—एक तो सहयोग-समितियां और दूसरे खेतीकी शिक्षा देनेवाले मदरसे ।

सहयोग-समितियोंकी चर्चा भारतवर्षमें बहुत चल रही है । उसके कानून भी बने हुए हैं । देशमें गवर्मेंटकी ओरसे उसका आंदोलन चल रहा है । परंतु हमारे देशमें और डेनमार्कमें यह भारी अंतर है कि डेनोंकी सहयोग-समितियां गांवकी पंचायतों-

से पैदा हुई हैं, और वहांकी सरकारने उन्हें अपना लिया है। यहांकी सरकारने पहले गांवकी पंचायतोंको नष्ट कर डाला, जिसको बहुत जल्दी सौ बरसके लगभग हो जायेंगे, और कोई छद्मीस बरस हुए कि विदेशी सरकारने सहयोग-समितियोंकी बुनियाद डाली और उन्हें अपने जोरसे फैलाया, परंतु उनमें इतने बंधेज रखे कि हमारे गरीब किसान उनको अपना न पाये। वहां सहयोग समितियोंकी बुनियाद नीचेसे पड़ी थी, और यहां शिमलेकी ऊंचाईसे। यह साफ है कि कौनसी बुनियाद मजबूत हो सकती है। वहांके किसानोंने सब तरहकी समितियां बनाई हैं, जिनका आरंभ पहले-पहल 'मकखन निकालनेवाली समिति'से हुआ। संवत् १९३६-में कुछ दरिद्र किसानोंने मिलकर मकखन निकालनेके लिए पहले-पहल समिति बनाई। वहां आजकल ऐसी चौदह-सौ समितियां हैं। इनके सिवा खरीदनेकी, बेचनेकी, लेनदेनकी, सब तरहकी सहयोग-समितियां बन गई हैं। इन पर सरकारी नियंत्रण नहीं है, परंतु सरकारमें इनकी साख मानी जाती है, इनको उधार रुपये दिये जाते हैं, इनके विरुद्ध सरकारी अदालतोंमें मुकदमे नहीं चलाये जा सकते।

डेनमार्ककी सारी उन्नतिकी पूंजी वहांकी 'लोक-पाठशालाओं'में है। पादरी ग्रुंट फिगने ६० बरससे ऊपर हुए इन पाठशालाओंका आरंभ किया था। उसने एक बार इस प्रकार अपनी इच्छा प्रकट की थी—“यह मेरी परम अभिलाषा है कि डेनोंके लिए ऐसी पाठशालाएं खुलें जिनमें देशके युवक पढ़ सकें। वहां वे मानव-स्वभाव और मानव-जीवनसे अच्छा परिचय पा सकें, और विशेषकर अपनेको खूब समझ सकें। वे गांवोंमें रहने वालेके कर्त्तव्य और संबंध अच्छी तरह समझ सकें, और देशकी जरूरतें भी अच्छी तरह जानें। मातृ-भाषाकी गोदमें उनकी देश-भक्ति पलेगी, और डेनी गीतोंमें उनके राष्ट्रका इतिहास पुष्ट होगा।

हमारे लोगोंको सुखी बनानेके लिए ऐसे मदरसे अमृतके कुंड होंगे।”

सचमुच इसी अमृत-कुंडसे डेनी किसानोंका नया जीवन निकला। वहां ऐसे साठ मदरसे हैं, जिनमें लगभग सात हजार शिक्षार्थी हैं। ये १८ बरससे लेकर २५ बरस तकके युवक और युवतियां हैं। पांच महीनेमें युवकोंकी पढ़ाई समाप्त होती है और तीन महीनोंमें युवतियोंकी। ये लोग प्रायः थोड़े लिखे-पढ़े मदरसोंमें भर्ती होते हैं, और खेतीकी ऊंची-से-ऊंची विद्या इस थोड़े कालमें पढ़कर पंडित हो जाते हैं।

संक्षेपसे डेनमार्कमें भी हम वही सब सुभीते पाते हैं जिन ११ सुभीतोंकी चर्चा हम अमेरिकाके संबंधमें कर आये हैं। यहां दोहरानेकी जरूरत नहीं है। अमेरिकासे फर्क इतना ही है कि अमेरिकाकी अनाज और फलकी खेती बढ़ी हुई है और डेनी लोग पशुकी खेतीमें बढ़े-चढ़े हैं। अमेरिकामें खेतोंका विस्तार सिर पीछे डेनमार्ककी अपेक्षा बहुत ज्यादा है। इन दोनों देशोंमें बैलोंसे काम नहीं लिया जाता, बल्कि लोग उन्हें खा जाते हैं; हां, वे गऊके पाजनेमें बड़े होशियार हैं और दूध मक्खनकी भारी तिजारत करते हैं।

संसारके सबसे बड़े खेती करनेवाले देशोंमें जो बातें हम देखते हैं उनमें सीखनेकी बातें लोहेकी मशीनें नहीं हैं बल्कि मनुष्योंके संगठन और प्रबंध हैं, जो हम भी कर सकते हैं अगर हमारे हाथ-पांव खुले हों।

